संस्थापक :
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्ध योग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42 / अंक : 11, 12
फरवरी, मार्च 2010

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

यदा यमवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवा:।
तदा देवमविज्ञाय दु:खस्यान्तो भविष्यति।।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् (20)

जब मनुष्यगण आकाश को चमड़े की भाँति लपेट सकेंगे तब उन परमदेव परमात्मा को बिना जाने भी दु:ख समुदाय का अन्त हो जायेगा।

• • •

प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

—मुण्डकोपनिषद् 2/4

यहाँ ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमादरहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अत: उसे बेधकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिए।

• • •

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्यो: स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।।

शास्त्र और आचार्य के द्वारा सुसंस्कृत मन से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस ब्रह्म में अणुमात्र भी भेद नहीं है। जो ब्रह्म में भेद या नानापन देखता है, वह बार–बार मृत्यु को प्राप्त होता है।

• • •

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति।
देहावभासक: साक्षी देहनाशे न नश्यति।।

(आत्मप्रबोध)

जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य घड़े के नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक साक्षी (आत्मा) देह के नाश से नाश को प्राप्त नहीं होता।

• • •

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणांनाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 11-12

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला-
द्युतिनीराजित पादपंकजान्त।
अयि मुक्तकुलैकपास्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि।।

सम्पूर्ण उपनिषद्रूप रत्नमाला की कान्ति के द्वारा तुम्हारे चरणकमलों का नखरूप प्रान्तभाग नीराजित हो रहा है और संसार से मुक्त (नारद-सनकादि) मुनि तुम्हारी उपासना में लगे हैं। इस प्रकार के हे श्री हरिनाम! मैं तुम्हारा आश्रय लेता हूँ।

फरवरी-मार्च, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	बैकुन्ठ धाम के दर्शन – ब्र. गोपालानन्द जी	9
4.	अभिवादन प्रणाम, चरण स्पर्श की वैज्ञानिक प्रमाणिकता –डा. जे.पी. शर्मा	12
5.	श्री प्रभु जी में मन अर्पण का फल – बलवीर सिंह	18
6.	गुरु जी मेरे...... –जगदीश राए बंसल	20
7.	श्री गीतामृत–पदावली – डा. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	21
8.	हमारी अपनी सिद्धयोग पत्रिका –अमित कुमार मिश्रा	24
9.	गुरुदेव के भजन – कमलेश	26
10.	यहाँ की प्रत्येक पत्तल मेरी – केशव देव उपाध्याय	27
11.	अष्टांग योग – प्रो. ऋषिराम शर्मा	33
12.	गीत –भूपेन्द्र 'अंकुश'	38
13.	गौ सेवा – अंशुमान देव मालवीय	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

योगियों के विविध संयम एवं उनके विविध फल

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्दमोहन जी महाराज

भगवान पतंजलिदेव विविध प्रकार के संयमों के भेद बतलाते हैं। उन-उन विषयों में संयम करने से योगी को विविध प्रकार के ज्ञान की अनुभूति होती रहती है। भगवान पतजलिदेव ताराव्यूह के ज्ञान का प्रकार बतलाते हैं।

चन्द्रे ताराव्यूह ज्ञानम्।।

अर्थात्-चन्द्रबिम्ब में संयम करने से योगी को ताराव्यूह का अपने आप ही ज्ञान हो जाता है। समाधि का प्रकार वही है जैसा कि हम पहले समझा चुके हैं। इस सूत्र पर व्यासभाष्य-

चन्द्रे संयमं कृत्वा ताराव्यूहं विजानीयात्।

अर्थात्-चन्द्रमा में संयम करके ताराव्यूह की रचना को योगिराज प्रत्यक्ष करें। इस संयम के संकल्प में योगी जब अपना यह संकल्प रखेगा कि-मैं चन्द्रबिम्ब से सम्बन्धित ताराव्यूह को जानूँ तो वह अवश्य ही जान जायेगा।

तारागण की गति का ज्ञान

ध्रुवे तद्गति ज्ञानम्।

ततो ध्रुवे संयमं कृत्वा, ताराणां गतिं जानीयाद् ऊर्ध्व विमानेषु कृतसंयमस्तानि विजानीयाद्।।

अर्थात्-ध्रुव तारे में संयम करने से योगी तारागण की गति को जान लेता है। क्योंकि-ध्रुव अटल है, सुस्थिर है। गति रहित स्थिर वस्तु पर संयम करने से उसके आसपास के गतिमान तारागणों का ज्ञान तो हो ही सकता है। इसी प्रकार से जैसे ध्रुव में संयम करने से तारागण की गति का ज्ञान होता है, उसी प्रकार से तारागण के ऊर्ध्व विमान आदि में संयम करने से उसका ज्ञान भी योगी को स्वाभाविक ही हो जाता है।

काया व्यूह का ज्ञान

शरीर भी एक अण्ड का रूप है। अनुभवी लोगों ने शरीर के अन्दर नदी, नाले, पहाड़ और समुद्र सभी को जाना है। अतः मनुष्य के शरीर को भी एक व्यूह रचना का ही रूपक माना गया है। इस कायारूपी व्यूह का ज्ञान प्राप्त करने के लिए योगी को कहीं न कहीं संयम करने की

आवश्यकता है ही। नाभिमण्डल ही एक ऐसा स्थान है जहाँ शरीर भर की नाड़ी समूह का एक अधिष्ठान है। अतः भगवान पतंजलिदेव ने निम्नांकित सूत्र में नाभिचक्र में संयम करने में कायाव्यूह के ज्ञान की सूचना इस प्रकार दी है –

नाभिचक्रे कायाव्यूह ज्ञानम्।

व्यास भाष्य–

नाभिचक्रे संयमं कृत्वा कायाव्यूहं विजानीयाद्, वात पित्तश्लेष्माणस्त्रयो दोषाः। धातवः सप्त त्वग्लोहित मांस–स्नायु अस्थिमज्जा शुक्राणि, पूर्व पूर्वमेषां बाह्यमित्येष विन्यासः।

अर्थात्–नाभिचक्र में संयम करने पर योगी को कायाव्यूह का ज्ञान होता है। कायाव्यूह में वात, पित्त, कफ आदि तीन प्रकार के दोष हैं और सात धातुएँ हैं, इसमें त्वचा अर्थात् चमड़ी, रक्त अर्थात् रुधिर, मांस, स्नायु अर्थात् नाड़ियाँ, हड्डी, मज्जा और शुक्र ये सब पहले बताये प्रकरण की अपेक्षा बाह्यरूप से माने गये हैं। जिस प्रकार से सूर्यद्वार में संयम करने से योगी को सारे भुवन का ज्ञान हो जाता है इसी प्रकार से नाभि मण्डल में संयम करने से शरीर की सारी रचना का ज्ञान योगी को हो जाया करता है, क्योंकि–शरीर आधार भूत वात, पित्त, कफ आदि दोष और सप्त धातुएँ हैं। इनको पूर्णरूपेण जान लेने पर इससे सम्बन्धित अन्य शरीर रचना को भी भली प्रकार से जाना जा सकता है। अब इससे आगे भगवान पतंजलिदेव एक और विषय का वर्णन करते हैं और वह विषय है –

क्षुत्पिपासा निवृत्ति का उपाय

योगाभ्यासी योगी के रास्ते में जिस प्रकार अन्य व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमादादि अन्तराय हैं उसी प्रकार से भूख और प्यास भी साधक के रास्ते में एक बहुत बड़ा अन्तराय है। साधक ज्यों–ज्यों अभ्यास में बैठेगा त्यों–त्यों उसे भूख और प्यास सताती रहेगी। फलस्वरूप वह अपने अभ्यास को छोड़ बैठेगा और यह लोकोक्ति चरितार्थ हो जायेगी कि –

भूखे भगति न होय गोपाला, यह लो अपनी कंठी माला।।

इसी बात को मद्देनजर रखते हुए भगवान पतंजलि जी ने क्षुत्पिपासानिवृत्ति का भी एक उपाय बता दिया–

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः।

व्यासभाष्यः– **जिह्वाया अधस्तात् तन्तुः ततोऽधस्तात् कण्ठः, ततोऽधस्तात् कूपः तत्र संयमात् क्षुत्पिपासे न बाधेते।**

अर्थात्–कण्ठकूप में संयम करने से योगी की भूख व प्यास मिट जाती है। जिह्वा के नीचे के भाग में तन्तु है, तन्तु से नीचे कण्ठ है और कण्ठ के नीचे कण्ठकूप है। जब योगी कण्ठकूप में अपने मन को लगा करके संयमित चित्त होकर समाधिस्थ बैठता है तब उसका क्षुत्पिपास

जनित दु:ख स्वत: ही शान्त हो जाता है और मन शान्त होकर सुस्थिरता की ओर जाने लगता है, किन्तु स्थिरता का लाभ प्राप्त करने के लिये उसको एक विशेष प्रकार के संयम की आवश्यकता अनुभव में आने लगी। उसी को बतलाने के लिए भगवान पतंजलिदेव ने कूर्म नाड़ी का संकेत किया।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्।

व्यासभाष्य–**कूपादध उरसि कूर्माकारा नाडी, तस्यां कृतसंयम: स्थिरं पदं लभते यथा सर्पो गोधावेति।**

अर्थात्–कण्ठकूप के नीचे वक्षस्थल की तरफ कूर्म नाड़ी है। जब योगी उसमें संयम करता है तो उसके चित्त में स्वाभाविक स्थिरता आने लगती है। लोक में इस प्रकार के उदाहरण प्रसारित हैं। सर्प और गोध दोनों इस प्रकार के जीव हैं कि ये दोनों ही पत्थर के मानिंद जड़वत् होकर पड़े रहा करते हैं। इसी प्रकार योगी भी यदि कूर्म नाड़ी में संयम करता है तो सर्प व गोधा की तरह ही स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

सिद्ध–दर्शन का उपाय

मूर्धि–ज्योति में संयम करने से योगी को सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं। सिर में कपाल भाग के नीचे एक छिद्र है, उस छिद्र में बहुत ही देदीप्यमान भास्वरा ज्योति की स्थिति है। योगी अपने संयम के आधार पर यदि वहाँ मन को स्थिर करता है तो उसको पृथ्वी और आकाश के अन्तराल में विचरने वाले सिद्धों के दर्शन अपने आप ही होने लगते हैं। इस प्रकार के जो सिद्ध लोग हैं वे देव रूप माने जाते हैं।

सर्व ज्ञान का उपाय

संयम के आधार पर योगी सभी कुछ जान लेता है किन्तु फिर भी आत्मज्ञान की ओर बढ़ते हुए योगी को प्रातिभ नाम के एक ज्ञान का उदय होता है, उस ज्ञान के उदय हो जाने पर योगी सब कुछ जान लेने की ताकत वाला हो जाता है। भगवान पतंजलिदेव के शब्दों में पढ़िये–

प्रातिभाद्वा सर्वम्।

व्यासभाष्य–**प्रातिभ नाम तारकं तद्विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्व रूपं यथोदयं प्रभा भास्करस्य तेन सर्वमेव जानाति योगी प्रातिमस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति।**

अर्थात्–

प्रातिभ नाम का एक ज्ञान है। जिसको विवेक ज्ञान का पूर्व रूप कहना चाहिए। जैसे सूर्योदय से पहले सूर्य का धीमा–धीमा प्रकाश उषाकाल में हो जाया करता है जिसको हम लोग पौ फटना भी कहा करते हैं। इस पौ फटने पर जिस प्रकार सांसारिक मनुष्य उस धुँधुले प्रकाश में सभी कुछ देखने लग जाते हैं इसी प्रकार विवेक–ज्ञान से पूर्व इस प्रातिभ नाम के ज्ञान के उदय होने पर योगी उस आत्म तेज के प्रभाव से सभी कुछ जानने लग जाता है। दूसरों के मन में

यदि कोई भाव गुजरता है तो योगी तत्काल जान लेता है कि–अमुक व्यक्ति यह सोच रहा है। अमुक स्थान पर इस समय अमुक कार्य हो रहा है।

योगी को चित्त का ज्ञान

हृदये चित्तसंवित्।

व्यासभाष्य–**यदिदमस्मिन ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म तत्र विज्ञानं तस्मिन् संयमाच्चित्त संवित्।**

अर्थात्–हृदय में एक कमल है। वह परम विज्ञान का घर है। उसमें संयम करने से योगी को चित्त का ज्ञान हुआ करता है। संयम सिद्ध योगी अपने संयमित चित्त को मैं अमुक ज्ञान प्राप्त करके ही रहूँगा इस भावना को दृढ़ करके जो भी कुछ जानना चाहता है, वह तत्काल जान जाता है। चित्त की कोई आकृति नहीं, किन्तु जब योगी जानना चाहता है कि मैं चित्त को जानू और इसी भावना को लेकर वह समाधिस्थ हो जाता है तो उस सर्वव्यापक अन्तर्यामी परम् गुरु परमात्मा की कृपा से उसको शुभ प्रेरणा मिल जाती है एवं वह उस वस्तु तत्व को जान लेता है। योग में संयम योगियों की एक अनुपम निधि है। संयम प्राप्त करना ही कुछ कठिन है। एक योगी अपने अभ्यास के बल से जहाँ–जहाँ अपने संयमित चित्त को लगायेगा उस ज्ञान विशेष को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा। अतः प्रत्येक पाठक को चाहिए कि योग की इस अमर निधि को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न में लग जाये। यह न समझे कि–मैं इस गूढ़ विषय को कैसे जान सकूँगा, कैसे पा सकूँगा?

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।

एक–एक बूँद पानी के भरने से घड़ा पूरा भर जाया करता है। अतः जो उद्यमी लोग पूर्ण पुरुषार्थ के साथ इस अन्तर निधि को प्राप्त करने के प्रयत्न में लग जायेंगे वे अवश्य ही पा लेंगे एवं अपने मनुष्य जीवन को सफल बना लेंगे।

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते।।

अधर्म से प्राप्त हुए धन के द्वारा जो दोष छिपाया जाता है,
वह तो छिपता नहीं, उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है।

सिद्धयोग - हमारी प्यारी पत्रिका

प्रिय पाठकगण / भाई–बहिन,

जयगुरुदेव की !

क्षण–क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अन्नतश्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग' अपनी आयु के 42 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 43 वें वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ–साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र–पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किंतु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धांतिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है, ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से श्री गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है – **आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः**। अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान–योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही

गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किंतु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं– '**संशयात्मा विनश्यति**' अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि – '**स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्**' अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामिग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेवजी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क 140 रु. हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सवाँई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

रामनवमी योग महोत्सव 22, 23 व 24 मार्च का निश्चित हो चुका है।

आपका

डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

बैकुण्ठ धाम के दर्शन

ब्र. गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव

बैकुण्ठ धाम के दर्शन

एक दिन मैं दिन के लगभग दो बजे श्री प्रभुजी के पास बैठा था कि बहिन द्रौपदी कुछ प्रेम के शब्द गाने लगी। तभी श्री प्रभु जी ने अपने इस बालक की चित्त–वृत्ति को अन्तरलीन लिया तो मैं अपने भीतर अनुपम दृश्य देखने लगा। वन–पर्वत लाँघते हुए बद्रीनारायण के दर्शन कराये। मन्दिर का स्वर्ण–कलश ऊपर से दिखलाकर श्री प्रभु जी ने कहा, जल्दी चलो, इधर न रुको, अभी बहुत चलना है। फिर बर्फीले पहाड़ दिखने लगे, पश्चात् चाँदी का पर्वत दिखाई पड़ा। कुछ ऊपर जाने पर स्वर्णमयी नगरी दिखाई पड़ी। फिर सोने का एक पर्वत दिखाई पड़ा। मैंने श्री प्रभु जी से कहा : यहाँ पर जो सिद्ध लोग रहते हैं, कृपा कर उनका भी दर्शन कराते चलिए। श्री प्रभु जी ने कहा, चलो, अभी बहुत चलना है। इतना कहकर उन्होंने सिर पर हाथ रखा तो उसके बाद मुझे दीखना और सुनना बन्द हो गया। कुछ देर बाद श्री प्रभुजी ने पुन: हाथ फेरा तो कोटि सूर्यों के समान प्रकाश उठा दीखने लगा। नेत्रों में उस प्रकाश को देखने की शक्ति न रही। फिर श्री प्रभुजी ने नेत्रों पर हाथ फेरा। अब जो आँख खुलीं तो श्री प्रभु जी विष्णु–भगवान के स्वरूप में विराजमान थे उनका वाम पाद श्री लक्ष्मी जी के कर–कमलों में था। दक्षिण पैर मुड़ा हुआ था कानों में सूर्य, चन्द्रमा के समान कुन्डल लटक रहे थे। नेत्रों की शान्ति–ज्योति आनन्द धारा बह रही थी। श्री प्रभुजी का गोल गुम्बदाकार मुकट संसार के सूर्य को तेजोहीन कर रहा था उनके दक्षिण पार्श्व में चार गौर वर्ण बालक पीताम्बर धारण किये बैठे थे। उनका तेज चन्द्रमा के समान शान्तिदायी था। श्री प्रभुजी के करुणामय नेत्रों से ऊपर को देखा। बस नाना प्रकार के शब्द आने लगे तरह–तरह के नाद और वाद्य सुनाई देने लगे। अप्सरा गन्धर्व नृत्य गान करते हुए दिखाई पड़े। श्री प्रभुजी अपनी प्रेम दृष्टि से सबको पुलकित कर रहे थे। प्रभु जी ने सामने दृष्टि डाली तो वीणा बजाते–बजाते चतुर्विध भक्ति के अधिकारी नारद जी दिखाई पड़े। श्री नारद जी मग्न अवस्था में थे। समीप आने पर उन्होंने श्री प्रभु जी के चरण कमलों में दण्डवत की। श्री प्रभुजी ने कहा– कहो नारद इस समय कैसे आना हुआ। नारद जी कहने लगे, प्रभो! एक शंका उत्पन्न हुई है। कहो नारद! मुझे तुम्हारी शंका बहुत प्यारी लगती है। नारद ने कहा– भगवन! आपने अनेक कथाओं में अनेक भक्ति रहस्य भरे हैं। फिर भी यह संदेह हो रहा है कि आपके श्री चरण–कमलों का रस प्राप्त करके जिनका संसार से सम्बन्ध छूट जाता है, वे पुरुष कैसे होते हैं? और उनका साधन कौन सा है? तथा उनके क्या लक्षण हैं? श्री भगवान बोले– हे नारद, संसार में जो मनुष्य

कामिनी व कांचन के पास होते हुए भी मन से उनका त्याग कर देते हैं उनको क्रोध का वेग नहीं आता। उनका हृदय मेरा हृदय और उनके नेत्र मेरे नेत्र हो जाते हैं। ऐसे पुरुषों के स्वरूप तथा वाणी को जो मनुष्य अपने मन से ध्यान द्वारा पूजन करते हैं, वह निश्चय ही मुझे प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य ऐसे भक्त के दर्शन करने मात्र से सर्व संकल्पों को त्याग देते हैं, उनको सालोक्य मोक्ष प्राप्त होता है। जिनके दर्शन व वाणी सुनने मात्र से सुध-बुध नष्ट हो जाती है, उनको सामीप्य मोक्ष प्राप्त होता है। जिनको ऐसे भक्त के दर्शन मात्र से हृदय में गुरु भाव का चित्र खिंच जाता है, तथा जो दर्शन मात्र से मेरे स्वरूप का आभास करने लगते हैं उनको सायुज्य मोक्ष पद प्राप्त होता है। जो श्री गुरु चरणों में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को लीन कर देता है वह मेरे स्वरूप को धारण करके केवल पद का अधिकारी होता है। यह सुनकर नारद जी ने कृतकृत्य होकर प्रणाम किया।

मानसरोवर दर्शन

श्री प्रभु जी कुछ मुस्कराकर मुझसे कहने लगे यदि नहाना चाहते हो तो स्नान कर आओ। मैंने स्नान- इच्छा प्रकट की। तो श्री प्रभु जी ने द्वारपालों को ारा किया। (फिर उन दोनों के साथ मैं जाने लगा) इधर-उधर वो दोनों जा रहे थे। मैं भी खूब तेजी से चल रहा था! किंतु आश्चर्य यह था कि पैरों से भूमि स्पर्श करती मालूम नहीं पड़ती थी। चलते-चलते सामने एक रास्ता आया। उन दोनों द्वारपालों में से एक बोला-इसने कौन सा ऐसा पुण्य किया है जो यहाँ आया है? दूसरा बोला : पूछ लो। पहले ने पूछा तुमने कौन से पुण्य कर्म किये जो यहाँ आये हो। मैंने कहा- भाई, मैं पाप-पुण्य नहीं जानता। दूसरा बोला: यह पागल है, जो पाप-पुण्य दोनों कहता है। पुण्य तो यहाँ आने का कारण हो सकता है किंतु पाप कैसे हो सकता है? पहला बोला : नहीं, पागल नहीं है। यह कोई गुप्त धर्मात्मा है, जो यहाँ आया है। दूसरा बोला: इससे अब ज्यादा कुछ न कहो। कुछ दूर चलने के बाद एक तालाब दीखने लगा। जिसके घाट मणि जटित थे। मणियों का प्रतिबिम्ब जल पर पड़ता था। इस दृश्य को देखने से आँखें हटना नहीं चाहती थीं। उस सरोवर में सुन्दर हंस मोतियों का भोग लगा रहे थे। हंस चोंच को जल में डालकर चूषण क्रिया से मोतियों को चूष लेते थे और मोती उनके गले में आते प्रतीत होते थे। दोनों द्वारपाल कहने लगे: तुम तालाब के समीप न जाओ। वहाँ देव-कन्यायें स्नान करने आयेंगी। मैंने ध्यान करके श्री प्रभु जी से पूछा- भगवन्! यह मुझको मना करते हैं। और मेरा चित्त हंस -क्रीड़ा देखना चाहता है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि जितना कुछ देख सके देख, इनका डर मत कर। फिर मैंने उनकी बातें न सुनीं। उनमें से एक बोला: इससे ज्यादा न कहो। यह कहीं वहाँ जाकर न कह दे। तब वे चुप हो गए। देव कन्या स्नान करने आयीं और अपने पैरों से जल भर-भर अपने ऊपर डाल कर स्नान करने लगीं। उनका शरीर दिव्य आभूषणों से देदीप्यमान हो रहा था। उनको देखकर मैंने मन ही मन प्रणाम किया। थोड़ी देर बाद ही हंस भी मोती खाकर तृप्त हो गये वे सब एक स्वर से शब्द करने लगे। उनका शब्द दीर्घनादक था। वह

'ओउम्' की ध्वनि से पूर्ण था। उस शब्द को सुनकर मन की चंचलता तथा संकल्प–विकल्प दूर हो गये। फिर मैं स्नान करने के लिए फव्वारे के नीचे खड़ा हो गया, जो उस मानसरोवर में से छूट रहा था। स्नान करने के बाद शरीर हल्का हो गया और वहाँ की सृष्टि दीखने लगी। चारों ओर अति रमणीक बाग थे। उन बागों के पुष्प अत्यन्त सुगन्धित स्वर्ण की आभा से युक्त थे। उस तालाब में हंस क्रीड़ा कर रहे थे, उनके पर भी सुनहरे और स्फटिक मणि के समान थे। उन बागों के वृक्षों के पत्ते लटके नहीं थे, बल्कि खड़े थे। इस शोभा को देखने से मन नहीं भरता था। दोनों द्वारपाल कहने लगे: चलो अब आरती का समय हो गया है। यह सुनकर मैं उनके साथ लौट पड़ा। जब मैं श्री प्रभु जी के पास आया, तब नाना प्रकार के आभूषणों से सज्जित अप्सरायें गन्धर्व और देवताओं को नाद वाद्य के यन्त्रों से सज्जित देखा। मैं श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में प्रणाम कर बैठ गया। उसी समय दिव्य बाजे बजने लगे। गन्धर्व–अप्सरा गायन और नृत्य करते हुए परिक्रमा करने लगे। मैं उस आश्चर्य को देख रहा था। आरती होने के बाद सब देवता विसर्जित हुए। श्री प्रभु जी कहने लगे इन दोनों ने तुमको कुछ कहा तो नहीं? वह दोनों मेरी ओर दीन भाव से देखने लगे। मैंने कहा– नहीं प्रभो, मुझसे ऐसा कोई शब्द नहीं कहा, जिससे कि कष्ट पहुँचे। तब श्री प्रभु जी ने कहा – तुम यहाँ रहना चाहते हो या जाना चाहते हो। मन्द बुद्धि के कारण मेरे मुख से निकला, जाना चाहता हूँ। हम लोग चल दिए। रास्ते में मैंने कहा– हे प्रभो! आपने कहा था कि लौटते समय गन्धर्वों और सिद्धों का स्थान दिखलायेंगे। श्री प्रभु जी ने कहा: चलो पहिले गन्धर्वों का स्थान देखो। गन्धर्व और गन्धर्विणी मिल कर स्नान कर रहे थे। मैं उनकी क्रीड़ा देखने लगा। श्री प्रभुजी गुप्त हो गये। ध्यान किया तो ध्यान में श्री प्रभु जी ने कहा– या तो नाच ही देख ले या मुझे ही देख ले। मैंने कहा: चलिए, मैं नाच नहीं देखना चाहता। पुन: अलकापुरी का किला दिखाया, उसमें वह स्पच्छोद सरोवर दिखलाया, जिसमें से एक धार भागीरथ जी ले गये। जिसको भागीरथी कहते हैं। दूसरी धार केदारनाथ जी को गई थी जिसे मन्दाकिनी कहते हैं। तीसरी धार अलकापुरी से निकल कर बद्रीनारायण को गई थी, जिसे अलखनन्दा कहते हैं। फिर मैंने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की: वह स्थान दिखलाइये, जहाँ भीमसेन ने गन्धर्वों को मारा था। इतने में मुझको चेत आगया।

अभिवादन प्रणाम, चरण स्पर्श की वैज्ञानिक प्रमाणिकता

डा. जे.पी. शर्मा, हिमाचल प्रदेश

मनुष्य की आदत रही है कि जब भी वह दूसरों से मिलता है, तब वह आदर स्वरूप एक दूसरे को सम्मान देने की अभिव्यक्ति करता है जिसे प्रायः अभिवादन कहा गया है। अभिवादन स्वरूप हम बराबर आयु वालों से हाथ मिलाते हैं या नमस्ते करते हैं। कोई राम–राम, जय श्री कृष्ण, जय सीयाराम, जय श्री राम, श्री राधे राधे इत्यादि कह कर अभिवादन की अभिव्यक्ति करते हैं। अभिवादन आयु वर्ग के अनुसार, परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है। अपने से बड़ों के लिए, प्रायः प्रणाम, नमस्कार, चरण स्पर्श करके अभिवादन करना श्रेष्ठ माना जाता है। अभिवादन की परम्परा प्राचीन काल से सभी मनुष्य समुदाय में रही है। भारत की संस्कृति में हम अपने बड़े–बूढ़ों, गुरुजनों, माता–पिता सभी को उनके पग छूकर अथवा चरण स्पर्श करके अभिवादन की अभिव्यक्ति करते हैं। सभ्य समाज में बड़ों को आदर प्रदर्शित करने का बहुत महत्व कहा गया है।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्कारे तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

अर्थात् जो व्यक्ति नित्य अपने गुरुजनों, माता–पिता, वृद्धजनों का अभिवादन करता है तथा उनकी सेवा करता है, वह दीर्घायु होने के साथ, विद्या, बल और शक्ति में महान होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम नित्य सुबह उठने के बाद अपने माता–पिता तथा गुरुओं को प्रणाम किया करते थे।

प्रातः काल उठि कैं रघुनाथा। मात–पिता गुरु नावहि माथा।।

बुजुर्गों को प्रणाम–चरण स्पर्श करने से देव लोक के देवता भी प्रसन्न होकर चरण स्पर्श कर्ता को आशीर्वाद देते हैं–

देवाः कुर्वन्ति साहाय्यं गुरुर्यत्र प्रणम्यते।।

इस सम्बन्ध में एक विशेष रोचक घटना व्यक्त करना आवश्यक है। महामुनि मुकण्डु ने सन्तान प्राप्ति के लिए कठोर तप किया। उनके घर में एक अल्पायु बालक का जन्म हुआ जिसका नाम 'मार्कण्डेय रखा गया'। देवों ने बतलाया था कि इस बालक की आयु केवल छः माह और शेष है, बालक उस समय मात्र पाँच वर्ष का था। पिता ने बालक मार्कण्डेय का यज्ञोपवीत संस्कार कराके बच्चे को घर से बाहर ऋषियों, मुनियों आदि की सेवा करने तथा उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करने की शिक्षा का उपदेश देकर भ्रमण पर जाने का आदेश दे दिया। बस फिर क्या था? उन्हें रास्ते में जो भी मिलता उसे आदर पूर्वक प्रणाम कर चरण स्पर्श करते

जाते। सभी से उन्हें दीर्घायु का आशीर्वाद मिलता रहा। सप्तर्षियों तथा गुरु वशिष्ठ ने भी उन्हें दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। आशीर्वादों के फलस्वरुप मार्कण्डेय जी ने काल को भी जीत लिया तथा वह अजर–अमर हो गये। यही है बड़ों के चरण स्पर्श तथा आशीर्वाद का फल। दूसरी घटना महाभारत की है। कुरुक्षेत्र के मैदान में जब पाण्डव सेनायें तथा कौरवों की सेनायें आमने–सामने युद्ध के लिए तैयार खड़ी थीं तब अर्जुन ने अभिवादन स्वरुप सबसे पहला बाण अपने गुरु द्रोणाचार्य के चरणों में प्रणाम करके युद्ध की आज्ञा माँगी थी। गुरु द्रोणाचार्य ने आशीर्वाद में अर्जुन को विजयी होने का आशीर्वाद दिया था जब कि द्रोणाचार्य जी कौरवों की तरफ से लड़ने को खड़े थे। इसी प्रकार महाराज युधिष्ठर ने अपने दादा भीष्म पितामह के पास जाकर युद्ध शुरु करने की आज्ञा माँगी तब भीष्म पितामह ने प्रसन्न होकर कहा था निर्भय होकर तू युद्ध कर, क्योंकि तूने अपने बुजुर्गों की आज्ञा माँगी है। अगर मेरी बिना आज्ञा के युद्ध करता तो तुझे मैं अवश्य शाप देता और तेरी हार निश्चित थी।

जब हम किसी को प्रणाम या नमन अथवा चरण स्पर्श करते हैं तब नम्रता पूर्वक झुक कर सम्मान के साथ सामने वाले का अभिवादन करते हैं। उस समय मन में स्वाभाविक रूप से सम्मान तथा आदरभाव जाग्रत हो जाता है। सम्मान देने वाला अपने सामने वाले से छोटा समझे यही प्रणाम–नमस्कार की अभिव्यक्ति है। अंग्रेजी में कहावत है– जो जितना महान होता है, वह उतना ही अधिक विनम्र होता है – "A great man always willing to be little".

आदर की अभिव्यक्ति फल से लदे पेड़ों के समान होती है। पौधे फल आने पर झुक जाते हैं तथा जब फल नहीं होते तब सीधे खड़े होते हैं। यही महानता है।

हमारे पूर्वज बड़े विद्वान वैज्ञानिक, आध्यात्मिक महापुरुष रहे हैं। उन्होंने प्रणाम, नमस्कार, चरण स्पर्श, चरणोदक तथा चरण धूलि को वैज्ञानिक आधार दिया है। आप जानते होंगे कि पृथ्वी के दो सिरे होते हैं। एक उत्तरी ध्रुव तथा दूसरा दक्षिणी ध्रुव कहलाता है। उत्तरी ध्रुव प्रायः शीतल तथा दक्षिणी सिरा गर्म होता है। ठीक उसी तरह मनुष्य शरीर में भी उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव होते हैं। सिर की तरफ उत्तरी तथा पैरों की तरफ दक्षिणी ध्रुव होता है। आयुर्वेद विज्ञान में इसीलिए कहा गया है–

"पैर गरम पेट नरम सिर ठंडा। फिर भी वैद्य आये मारो उसको डंडा।" अर्थात् स्वस्थ मनुष्य का सिर ठंडा रहे, पेट नरम हो तथा पैर गरम बने रहें तो वैद्य से परामर्श लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब हम किसी दूसरे को आदर देते हैं तो उसके व्यक्तित्व तथा उसके स्वरूप से प्रभावित होते हैं। उनके कुछ विशेष गुण दिखाई देते हैं। तभी हमारी अन्तर्रात्मा उसके सामने नतमस्तक होने को तैयार होती है। गुरुजनों, माता–पिता, सगे सम्बन्धियों के प्रति श्रद्धाभाव जाग्रत हो उठने पर हम उन्हें प्रणाम चरण स्पर्श करते हैं। यह श्रद्धाभाव जाग्रत होने को कारण शरीर की भौतिक चुम्बकीय आकर्षण शक्ति के कारण हुआ करता है। शरीर

के अन्दर सूक्ष्म भौतिक चुम्बकीय शक्तियों का भंडार छिपा रहता है। इन भौतिकीय चुम्बकीय शक्तियों के कारण ही हमारा मन दूसरों के प्रति आकर्षित होता है। चुम्बकीय शक्ति मनुष्यों में एकसी नहीं पाई जाती। उनके स्वभाव, चरित्र, गुण, आध्यात्मिक शक्ति, ज्ञान के अनुसार कम या अधिक होती है। अतः जब एक कमजोर शक्ति वाला मनुष्य, प्रचुर शक्ति सम्पन्न व्यक्ति से गले मिलता है तब कमजोर शक्ति वाला मनुष्य कुछ शक्ति और अर्जित कर लेता है, अतः शक्ति का आदान–प्रदान हो जाता करता है। यह वैज्ञानिक सत्य है। चुम्बक का गुण है कि जो भी सजातीय गुण उसके सम्पर्क में आयेगा, उसे अपनी तरफ आकर्षित कर लेगा।

गुरु जन सदैव शक्ति के पुंज होते हैं। जब हम पूर्ण श्रद्धा से उनकी चरण रज अपने मस्तक पर लगाते हैं तब गुरु शक्ति के कुछ अंश हम अर्जित करके लाभान्वित होते हैं। क्योंकि गुरु चरणधूलि में चुम्बकीय शक्ति होती है। जिसके कारण चरणरज सदैव चुम्बकीय शक्ति से आवेशित रहा करती है।

रसायन शास्त्र के अनुसार जब किसी कम्पाउण्ड को घोला जाता है, उसमे दो तरह के आयन होते हैं। एक धनायन तथा दूसरा ऋणायन होता है। एक ही तरह के आयनों में संगठन नहीं बनता जबकि विपरीत आवेशित आयन मिलकर संगठित हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार चुम्बक में दो ध्रुव, उत्तरी तथा दक्षिणी होते हैं। एक से ध्रुवों में आकर्षण नहीं होता तथा एक दूसरे से दूर रहा करते हैं जब कि विपरीत ध्रुवों में आकर्षण होता है तथा खिंचकर आपस में मिल जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जब हम झुक कर प्रणाम या चरण स्पर्श करते हैं तब हमारा सिर अनायास ही उस व्यक्ति या गुरुजन या बुजुर्ग के पैरों में लग जाता है। अर्थात् हमारा सिर, उत्तरी ध्रुव, उस बुजुर्ग या गुरुजन के चरणों में स्थित दक्षिणी ध्रुव को स्पर्श कर लेता है तथा उससे आवेशित होकर हम लाभान्वित होकर शक्ति प्राप्त करके गद–गद हो जाते हैं। हाथों से ऐसा करना उचित नहीं है। उसे इसी रहस्य के कारण अमर्यादित कहा गया है।

यही वजह है हमारे पूर्वजों ने अच्छी नींद लेने के लिए सदैव दक्षिण दिशा की तरफ सिर रख कर सोने की शिफारिश की है। आज का विज्ञान भी इस बात से सहमत है। विपरीत दिशा में सोने से अनिद्रा, बैचेनी तथा दुःस्वप्न होते हैं। कभी–कभी उच्चरक्तचाप, हृदय दुर्बलता, श्वासावरोध आदि भी हो जाया करते हैं। शरीर के तंत्र विचलित होने लगते हैं। इसी लिए विपरीत ध्रुवों में सोना सदैव अच्छा माना गया है।

कल्पना कीजिए अगर हमारे पूर्वजो ने शरीर में चुम्बकीय आवेशों की खोज न की होती तो आज अभिवादन करने का स्वरूप कुछ इस प्रकार का होता– हम एक दूसरे के मष्तक आपस में मिलाते अथवा एक दूसरे के पैरों को आपस में मिलाकर अभिवादन करते परंतु उस स्थिति में शक्ति का आदान प्रदान कुछ कम होता। प्रत्येक जीवधारी के शरीर में हर पल विद्युत तरंगों का प्रवाह होता रहता है। शरीर स्पर्श कर देने मात्र से शक्ति का संचार किया जा सकता है। आज की दुनिया में मानव रोगों का उपचार स्पर्श चिकित्सा द्वारा किया जाने लगा है।

अंग्रेजी में इसे 'टच थैरेपी' कहा जाता है। शरीर में विद्युत प्रवाह के कारण तन्त्रिका तंत्र के धनात्मक तथा ऋणात्मक आवेश बनते–बिगड़ते रहते हैं। यही तथ्य था कि श्री नरेन्द्र स्वामी (श्री विवेकानन्द) को जब स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने अपने बाँये पैर से स्पर्श किया तो स्वामी नरेन्द्र जी के शरीर में अजीब सी शक्ति परिवर्तित हो गई तथा दूसरी बार हाथ से छू लेने से तो नरेन्द्र काफी अचेत से हो गये। जब उनकी छाती पर परमहंस जी ने हाथ फेरा तब कहीं स्वामी नरेन्द्र होश में आये। यह सब शक्ति प्रवाह का ही कारण था।

शास्त्रों में चरण स्पर्श की पद्धति निम्न प्रकार से बतलाई गयी है –

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा।
सव्येन सव्यः स्प्रँष्टव्यौ दक्षिणेन च दक्षिणाः।।

अर्थात् वेदशास्त्रों के पढ़ने से पूर्व तथा बाद में श्री गुरुदेव जी के दोनों चरणों का सम्मान सहित स्पर्श करना चाहिए। बाँये हाथ से बाँये पैर का तथा दाँये हाथ से दाँये पैर का स्पर्श करना श्रेष्ठ होता है।

मनुस्मृति में कहा गया है–

ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते।।
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

अर्थात् युवा लोगों के प्राण, वृद्धलोगों के आ जाने पर चढ़ते हैं तथा उन्हें प्रणाम कर लेने से पुनः यथास्थान आ जाते हैं। इसलिए सदैव उठकर श्रद्धापूर्वक बड़ों को प्रणाम् करना चाहिए। इससे आयु, विद्या, यश तथा बल की वृद्धि होती है। प्रणाम अथवा चरण स्पर्श के बाद हमारा सारा शरीर ऊर्जा की नवीन चेतना से झंकृत हो उठता है और हम आनन्द का मन ही मन अनुभव करते हैं। जितनी भी शक्ति पुंज वाले व्यक्तित्व को प्रणाम करते हैं उसी के अनुसार शक्ति का संचार उसी समयानुपात में हमारे शरीर में रहा करता है। मानसिक रोगों का उपचार विद्युत प्रवाह द्वारा किया जाता है, विद्युत पवाह से प्रसुप्त मनः चेतना जगाई जाती है। भगवान श्री राम ने पत्थर बनी अहिल्या में अपनी शक्ति का संचार करके पुनर्जीवित कर दिया था। अहिल्या, गौतम ऋषि के शाप (नकारात्मक विद्युत प्रवाह) के कारण पत्थर (जड़) बन चुकी थी।

परसत पद पावन शोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।।

हमारे शरीर में चुम्बकीय, विद्युतीय तथा चुम्बक विद्युतीय या इलैक्ट्रोमैगनेटिक प्रभाव होते रहते हैं जिनके कारण शक्ति पुंज बनते रहते हैं। जब हम आपस में हाथ मिलाते हैं उस समय भी हाथों द्वारा शक्ति संचार का आदान–प्रदान होता है तथा अधिक शक्तिवान के

शरीर से निर्बल व्यक्ति के शरीर में ऊर्जा शक्ति चली जाती हैं। निर्बल व्यक्ति, पहले से अधिक सशक्त महसूस करता है। अगर अधिक समय तक हाथ मिलाते रहें तब सम्भव है दोनों में समान सशक्तायन आ जाये।

शक्ति का तेज पुंज गुरुदेव की चरणोदक में स्पष्ट झलकता है। चरणोदयक के साथ चरण रज मिली होती है। चरणों में सदैव दक्षिण ध्रुव होता है। गुरुजी के चरणों को जब जल से धोते हैं तब उसमें दक्षिणी ध्रुव के चुम्बकीय गुण आ जाते हैं। चरणोदक को साधक जब ग्रहण करता है अर्थात् मुँह द्वारा पीता है तब उत्तरी ध्रुव के चुम्बकीय गुणों से आकर्षित होकर साधक को शक्ति सम्पन्न कर देता है, तथा ऊर्जा से भर देता है। क्योंकि मुँह सिर के साथ है जिसमें उत्तरी ध्रुव के गुण होते हैं। यही कारण था कि केवट ने नाव में बैठाने से पहिले श्री राम के चरण धोकर चरणोदक पीया था तथा गंगा पार कराने की उतराई तक नहीं स्वीकार की थी। उसे तो श्री राम के चरणोदक से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी मिल गये थे।

हमारे शरीर का निर्माण पाँच तत्वों के मिलने से हुआ है। उसी प्रकार सृष्टि का निर्माण भी पाँच तत्वों से हुआ है। मानव शरीर को भोजन के रूप में लगभग सोलह तत्वों की आवश्यकता होती है। अतः शेष ग्यारह तत्व कहाँ से भोजन के रूप में आते हैं? जैसे लाल रंग तथा पीला रंग मिलाने से बैंगनी रंग बन जाता है, पीला तथा नीला मिलाने से हरा बन जाता है तथा लाल और नीला मिलाने से फिरोजी रंग बन जाता है, उसी प्रकार शरीर में स्थित पाँच तत्वों से अन्य भोज्य तत्वों अर्थात सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता पूरी होती रहती है। साधू, सन्त, महात्मा तो बहुत सूक्ष्म मात्रा में भोजन लेते हैं फिर भी हमसे सुन्दर, स्वस्थ, सुडौल देखे जा सकते हैं। शरीर एक विविध प्रकार की प्रयोगशाला है। आवश्यकता होने पर क्रियाशील बन जाता है। शरीर की आन्तरिक ऊर्जा उस समय जाग्रत हो उठती है जिस समय खुराक के रूप में भोजन तत्वों का जाना रुक जाता है। यही कारण रहा है हमारे पूर्वज काफी लम्बे अन्तराल तक निराहार रहा करते थे।

पेड़–पौधे तथा फसलें भी अपना भोजन घोल रूप में लेते हैं। इसीलिए फसलों को पानी से सींचा जाता है। पेड़–पौधों में पानी देने से मिट्टी में पाये जाने वाले तत्व पानी में घुलकर आयन बनाते हैं। पौधों की जड़ों में भी भोजन के रूप में आयन तत्व होते हैं। जड़ों में पाये जाने वाले आयन, मिट्टी के घोल में पाये जाने वाले आयनों के आयनो का विनमय (आयन एक्सचेंज) होता है। इसी प्रकार पेड़ पौधे तथा फसलें अपना भोजन मिट्टी तथा उर्वरकों के घोल से लेते रहते हैं। अतः इसी प्रकार जब हम महापुरुषों, गुरुजनों आदि के चरणोदक घोल रूप में लेते हैं तब चरणोदक पीने वाला, महापुरुष अथवा चरणोदक देने वाले के गुणों की शक्ति श्रद्धालु में अनायास ही आ जाती है। चरणोदक के महत्व के बारे में कहा गया है–

अकाल मृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम्।

विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

अर्थात् चरणोदक पीने से अकाल मृत्यु का भय नहीं रहता तथा इसे पीने से सभी प्रकार की आदि व्याधि बाधाओं का समूल विनाश होता है। विष्णु चरणोदक अथवा गुरु चरणोदक पीने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में कहा है –

चरण कमल रज कहुँ सबु कहई।
मानुष करनि मूरि कछु अहई।।

अर्थात् जब भगवान के चरण रज से व्यक्ति को सारे तत्वों की प्राप्ति हो जायेगी, वह तो मुक्त हो ही जायेगा। इसीलिए प्रसन्न होकर केवल अपनी नैया में श्री राम को बिठाकर पार ले गया। संकोच वश भगवान ने उतराई देनी चाही तब केवट कहने लगा –

नाथ आज मैं सब कुछ पावा।
मिटे दोष दुःख दारिद्र दावा।।

अर्थात् हे नाथ! आज मुझे सब कुछ मिल गया। मेरे सारे भव बन्धन टूट गये और मैं मुक्त हो गया तथा कहा–

'आज कछु नाथ न चाहिए मोरे'

केवट को चरणामृत (चरणोदक) पीने वाला प्रथम पुरुष कहा गया है। तभी से चरणोदक पीने की प्रथा प्रचलित मानी गयी है। केवट बड़ा ज्ञानी था।

काशी, बनारस, हरिद्वार, केदारनाथ, बदरीनाथ तथा अन्य तीर्थों में ऐसे श्रद्धालु पाये जाते हैं, जो यह चाहते हैं कि उन्हें प्रतिदिन ऐसे सन्त महापुरुष मिलें जिनके चरणोदक का पान किया जा सके।

प्रायः देखा गया है जब कोई पुरुष किसी तीर्थ से लौटकर घर वापस आता है तब घर के परिजन परात में पानी से उसके पैर धोकर चरणोदक के रूप में पीते हैं तथा घर के कोने–कोने में उसका छिड़काव करते हैं। दीक्षागुरु अथवा कुलगुरु के घर पर आने पर उनके चरणों को धोकर चरणामृत के रूप में पीने तथा घर में छिड़कने से तीर्थों का फल मिलता है।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि चरणरज धारण करना, चरणोदक पीना तथा चरण स्पर्श व प्रणाम करना एक वैज्ञानिक विधि है। इससे श्रद्धालु लाभान्वित होते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्री सद्गुरु चरणों में दास का कोटि–कोटि साष्टांग प्रणाम् तथा सभी गुरु भाईयों को जय गुरुदेव।

श्री प्रभुजी में मन अर्पण का फल

बलवीर सिंह, एड., योग साधना केन्द्र पंजाबी बाग, आगरा

मन्मना भव मम्दक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामे वैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि में।। 18/65
मन्मनाभव मम्दक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामे वैष्यसि युक्तेवमात्मनं मत्परायण:।। 9/34

भगवान में मन वाला – 9/34

भगवान का भक्त होना – त्वमेव माता च पिता त्वमेव..........

भगवान का पूजन करना– 9/27 से 9/28

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम श्रनामि प्रयतात्मन:।। 9/26

यदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रगट होकर प्रीति सहित खाता हूँ।

यत्करोष यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। 9/26

जो तू कर्म करता है, खाता है, हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर।

शुभा शुभ फलैरेवं मोक्ष्यसे कर्म बन्धनै:।
सन्नयास योग युक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।। 9/28

इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान के अर्पण होते हैं – ऐसे सन्यास योग से युक्त चित्त वाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेगा। और उनसे मुक्त होकर मुझे ही प्राप्त होगा।

माम–पद है ईश्वर के सभी रूपों के लिए

निर्गुण निराकार, साकार निर्गुण, सगुण साकार

मामेवेष्यसि– ऐसा करने से मेरे को ही प्राप्त होगा

नमस्कुरु– मेरे को नमस्कार– उनके विभिन्न रूप नाम महिमा आदि को नमस्कार

इस प्रकार इन श्लोकों में चार साधन बतलाए गये – उन चारों से अथवा एक से भी

भगवत् प्राप्ति हो सकती है। वैसे –

योगी–ज्ञानी भक्त में अथवा जिसमें एक प्रकार की पराकाष्ठा होती है उसमें दूसरे प्रकार स्वत: प्रगट व स्वत: सिद्ध होते हैं और उनका परम कल्याण होकर वे दूसरों का भी कल्याण करने में सक्षम होते हैं।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।

निव शिष्यसि मय्येव अतउर्ध्व न संशय:।।12/8

अर्थात् तुम मेरे में मन स्थिर करो मुझमें ही बुद्धि को लगाओ फिर तो तुम मुझमें ही निवास करोगे। इसमें संशय नहीं है।

अरोषणो य: समलोष्टाश्मकाञ्चन:
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रह:।
निन्दाप्रशंसोपरत: प्रियाप्रिये
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुक:।।

जो क्रोध न करने वाला, ढेला–पत्थर और सुवर्ण को एक–सा समझने वाला, शोकहीन, सन्धि–विग्रह से रहित, निन्दा–प्रशंसा से शून्य, प्रिय–अप्रिय का त्याग करने वाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (सन्यासी) है।

गुरु जी मेरी..........

गुरु जी मेरी, चरण लगन मत तोड़ना
गुनाह हैं मेरे लाखों आना जाना मत छोड़ना (टेक)
बिन सेतू सागर गहरा, बीच भंवर मत छोड़ना
पहनी है सिद्ध योग की माला, ये कभी मत तोड़ना
गुरु जी मेरी ....
हृदय रुपी मेरी खेती, चरणों बिन मत सोखना
खेती बोई गुरु नाम की, मेरे भरोसे मत छोड़ना
गुरु जी मेरी ....
जन्म जन्म का मेरा अन्तर्यामी, पोल मेरी मत खोलना
नयनों का मैंने हार बनाया, मुखड़ा कभी मत मोड़ना
गुरु जी मेरी ....
संवाई धाम ले जा करके, सेवा से मुझे जोड़ना
सिद्ध गुफा में बैठा करके, ध्यान मेरा मत तोड़ना
गुरु जी मेरी ....
जन्म जन्म के संस्कार भरे जो, दया कर निचोड़ना
आ जाए जब लहर शिवा में, मुक्ती दर खोलना
गुरु जी मेरी ....
हृदय में गुरु डेरा डालो, हाथ पकड़ मत छोड़ना
''अधम'' गलती का पुतला, कान पकड़ मरोड़ना
गुरु जी मेरी ....

– जगदीश राए बंसल ''अधम'', नई दिल्ली

श्री गीतामृत – पदावली

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

श्रीमद्भगवतगीता विश्व–धर्म का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। मानव जीवन की प्रत्येक समस्या का इसमें समाधान है। गीता परिमार्जन पर महत्त्व देती है और देशकालानुसार अपने कर्मों में अभिरति (कर्त्तव्य–कर्म) भी। पूज्यपाद गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी ने इसीलिए प्रतिदिन प्रात: इसका पाठ दिनचर्या का अविभाज्य अंग बना रखा था।

चूँकि संस्कृत भाषा अपेक्षाकृत कम लोगों के लिए बोधगम्य है अत: गुरुदेव के सम्पर्क में रहे श्री रामप्रकाश गुप्ता (पुत्र लाला प्यारे लाल जी–अलीगढ़) कृष्णा कत्था फैक्ट्री, हल्द्वानी जिला नैनीताल द्वारा संशोधित परिवर्धित, सरल और अर्थ–पूर्ण गीता के इस पद्यात्मक अनुवाद की श्रृंखला – सिद्धयोग के पाठकों के लिए प्रस्तुत की जा रही है ताकि परमार्थ पथगामी कर्म, भक्ति और ज्ञान के त्रिसूत्री संगम में अवगाहन कर सकें।

अध्याय – 1

धृतराष्ट्र उवाच –

कुरुक्षेत्र की धर्म–धरा पर लड़ने को सब जुटे जहाँ।
मेरे और पांडु पुत्रों ने हे संजय! क्या किया वहाँ।। 1।।

संजय उवाच –

व्यूह – सहित पाण्डव – सेना को जब देखा दुर्योधन ने।
जा समीप आचार्य देव के उनसे वहाँ लगा कहने।। 2।।

दुर्योधन उवाच –

पांडवगण की इस सेना में देखो गुरुवर! व्यूह बड़ा।
जिसे आपके चतुर शिष्यवर द्रुपद–पुत्र ने किया खड़ा।। 3।।

अर्जुन तथा भीम सैनिक योद्धा, लेकर धनुष, युद्ध की चाह।
खड़े हुए हैं समर–भूमि में सात्यकि, द्रुपद, सुवीर विराट।। 4।।

धृष्टकेतु औ चेकितान हैं, काशीपति हैं अति बलवान्।
पुरुजित्, कुन्तिभोज नृप दोनों, नरपुङ्गव हैं शैब्य महान्।। 5।।

उत्तम–ओजस अति बलशाली युधामन्यु हैं वीर खड़े।
द्रौपदेय, सौभद्र यहाँ हैं, महारथी सब सुभट बड़े ।। 6।।

सर्वश्रेष्ठ जो वीर हमारे, द्विजवर! उन्हें आप लें जान।
नाम गिनाता, अब अपने भी नायकगण के जो बलवान।। 7।।

यहाँ आप हैं, भीष्म पितामह, कर्ण, कृपा जो सदा अजय।
अश्वत्थामा है, विकर्ण भी, भूरिश्रवा है वीर अभय।। 8।।

निज प्राणों की आहुति देने अन्य अनेकों वीर खड़े।
अस्त्र–शस्त्र से सजे हुए ये चतुर युद्ध में सभी बड़े।। 9।।

भीष्म पितामह से रक्षित यह अपर्याप्त है मम सेना।
भीमारक्षित सैन्य हमारी है पर्याप्त, समझ लेना।। 10।।

व्यूह–द्वार पर अपने–अपने सुस्थिर रहकर शूर सभी।
भीष्म पितामह की रक्षा ही करें वीरवर! आप सभी।। 11।।

संजय उवाच

दुर्योधन को हर्षित करने केहरि–सा कर नाद महा।
ऊँचे स्वर में भीष्म पितामह ने, फूँका अपना शंख वहाँ।। 12।।

शंख, नृसिंह, मृदंग, नगाड़ा और ढोल का नाद हुआ।
सहसा इनके बज उठने से, दुस्सह वहाँ निनाद हुआ।। 13।।

उज्जवल घोड़ेवाले रथ में, बैठे वे दो पुरुष जहाँ।
कृष्ण तथा अर्जुन ने राजन् ध्वनित किये निज शंख वहाँ।। 14।।

हृषीकेश ले पांचजन्य को, देवदत्त ले अर्जुन वीर।
भीम भयंकर पौंड्र शंख को लगे बजाने अति गंभीर।। 15।।

अपने शंख अनंतविजय को, धर्मराज ने बजा दिया।
सहदेव नकुल ने मणिपुष्पक, औ सुघोष से नाद किया ।। 16।।

काशीराज सुवीर धनुर्धर, तथा शिखंडी महारथी।
धृष्टद्युम्न औ' नृप विराट भी, सात्यकि वीर अजयभट भी ।। 17।।

महाबाहु अभिमन्यु वीर औ', द्रुपद, द्रौपदी की सन्तान।
अपना-अपना शंख बजाया, इन वीरों ने वहाँ महान्।। 18।।

कौरवगण के हृदयों को इस, शंख-नाद ने दिया विदार।
हुआ गगन में तथा धरा पर भीषण गर्जन का संचार।। 19।।

कपिध्वजावाले अर्जुन ने तब सैन्य व्यवस्था देख वहाँ।
धनुष उठाया, समराङ्गण में, कौरवपति के तनय जहाँ ।। 20।।

अर्जुन उवाच –
हे राजन तब हृषीकेश से कहने लगे धनंजय वीर।
दोनों दल के बीच हमारा रथ ले चलिए हे रणधीर।। 21।।

(शेष अगले अंक में)

हमारी अपनी सिद्धयोग पत्रिका

योगाचार्य अमित कुमार मिश्रा, शुक्लागंज (उन्नाव)

अपनी लम्बी यात्रा में 'सिद्धयोग' पत्रिका ने कई उतार–चढ़ाव देखे पर इसका प्रसार कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार 'सिद्धयोग' की ज्योति निरन्तर प्रज्वलित रही। यह पत्रिका छपे कागजों की पोथी नहीं, हम सबके लिए हमारे परमाराध्य श्री महाप्रभु जी, श्री प्रभु जी का साक्षात् दिव्य स्वरूप है। लाखों व्यक्तियों के जीवन को इसने योगमय बनाया है। अनगिनत लोगों को इसने उस परम सत्ता योगेश्वर द्वय से परिचित कराया है।

'सिद्धयोग' पत्रिका 7 अप्रैल दिन रविवार सन् 1968 को श्री रामनवमी के दिन श्री प्रभु जी ने हम सबके कल्याणार्थ प्रारम्भ की थी। सन् 1968 से जो धारा योग की गंगा के रूप में प्रवाहित हुई है, वह अनवरत बह रही है।

योग योगेश्वर सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज इसके संस्थापक हैं, आचार्य श्री दासलाल जी महाराज इसके सम्पादक हैं। हम सब गौरवान्वित हैं कि हम श्री प्रभु जी की सिद्धयोग वर्षा से सिंचित 'सिद्धयोग' पत्रिका हर माह अपने–अपने घरों में पाते हैं। इसमें दी गई सामग्री अति उच्चस्तरीय होती है। इसमें योग को जीवन जीने की कला के संदेश के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें जो विविध स्तम्भ दिए जाते हैं, उनसे जन–जन को वैविध्यपूर्ण जानकारी मिलती है। यदि हम इसमें प्रकाशित लेखों की विषय सूची पर प्रकाश डालें तो इसमें समाविष्ट विविधता का एक निराला रूप प्रतिबिम्बित होता है। योग प्रधान लेख, योग विज्ञान की पृष्ठभूमि पर आज की सभी शारीरिक मानसिक परेशानियों, कष्टों, व्यथाओं का समाधान श्री प्रभु जी के योग संदेश (विशेष लेख) का अध्ययन चिन्तन कर पल भर में ही हो जाता है। श्री सद्गुरुदेव भगवान की कृपालीलाओं का वर्णन, श्री गुरुगीता, श्रीमद्भगवद्गीता, श्री रामचरित मानस, शास्त्रों, पुराणों एवं उपनिषदों की सरल शब्दों में व्याख्या, भगवान पतंजलि के योगसूत्रों का विशद वर्णन, आश्रम का एवं आश्रम के योग प्रचार केन्द्रों का समाचार व सम्पादक के रूप में गुरुदेव श्री दासलाल जी महाराज का सम्पादकीय स्तम्भ, मानो ऐसा लगता है कि जैसे तरह–तरह के पुष्पों से पुष्प वाटिका सी ही सजा दी गई हो।

आज के भूमंडलीकरण के दौर में जहाँ अधिक से अधिक पाने की होड़ सी मची है, वहीं यह योग प्रवाह लोगों को योगमय जीवन जीने में सार्थक सिद्ध हुआ है। आज जो दुःख चारों ओर संव्याप्त है, बैचेनी है, तनाव है, उसका मूल कारण है 'अज्ञान'। उस अज्ञान को

मिटाकर सद्ज्ञान की स्थापना करना, भारत वर्ष को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व को रोगमुक्त कर योग युक्त बनाना हमारे श्री आश्रम का एवं हमारी पत्रिका का प्रमुख उद्देश्य है।

बिना किसी आर्थिक लाभ की आकांक्षा किये प्रतिवर्ष आर्थिक क्षतिपूर्ति करते हुए हमारी पत्रिका नए-नए सोपानों पर बढ़ती ही जाती है, इसका मूल्य किसी भी स्थिति में अन्य सभी पत्रिकाओं की तुलना में कहीं सस्ता है, यह तब है जब यहाँ विज्ञापन देने की नीति नहीं है और अन्य पत्रिकाओं का गुजारा मात्र विज्ञापन से ही चलता है।

श्री रामनवमी को ही हमारे श्री महाप्रभु जी का अवतरण दिवस योग महामेला के रूप में श्री प्रभु जी प्रतिवर्ष मनाया करते थे, इसी महापर्व से पत्रिका के सदस्य बनाये जाते हैं।

यह वर्ष हमारे और आपके हृदयाराध्य भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की जन्म शताब्दी का वर्ष है। हमें अपना लक्ष्य बनाना चाहिए कि 'सिद्धयोग' की सदस्य संख्या दो गुनी करनी चाहिए। वरिष्ठ प्रतिभावान गुरुभाई इस स्वर्ण जयंती वर्ष में यह संकल्प तो ले ही सकते हैं कि इस वर्ष पत्रिका के दो न्यूनतम सदस्य और बनाएंगे। यदि हर एक गुरुभाई दो सदस्य बढ़ा दे तो पत्रिका की सदस्य संख्या एक वर्ष में निश्चित ही दो वर्ष हो जायेगी।

पत्रिका की ग्राहक संख्या बढ़े, इससे अधिक महत्वपूर्ण है, इसकी पाठक संख्या बढ़े। लोगों के भावनाशील परिजन दबाव में आकर पत्रिका मँगा तो लेते हैं, पर माह भर उसका रैपर भी नहीं खोलते, वैसी ही पड़ी रही, इससे क्या लाभ। ग्राहकों को पाठक बनाना हमारा प्रथम एवं अहम कर्त्तव्य है।

पत्रिका को पढ़िए एवं अपने इष्ट मित्रों, सगे सम्बन्धियों को पढ़ाईये। पढ़ने के उपरान्त इसे बक्से में बंदकर न रख दें बल्कि सुयोग्य सुपात्र भाईयों को, योग जिज्ञासुओं को पढ़ने के लिए दें। इसके पुराने अंक कभी भी भूलवश भी रद्दी समझ न तो बेचें, न ही फाड़ कर अन्य किसी कार्य में लेवे। ध्यान रहे, यह पत्रिका एक-एक शब्द श्री गीता सम महत्व रखती है, यह हमारे लिए उतनी ही पवित्र महान है जितनी रामायण या श्री गीता।

आशा ही नहीं विश्वास भी है कि आप अपने इस कनिष्ठ गुरुभाई की प्रार्थना को स्वीकार करेंगे एवं कम से कम दो सहयोगी सदस्य बनाने का सफल प्रयास करेंगे। अस्तु।

धन्यवाद!

सिद्धयोग पत्रिका हमारी गुरुवर सम महान।
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् प्रभु रामलाल भगवान।।

गुरुदेव के भजन

कमलेश, करौली

गुरु भजन

अब मैं कुछ गुरुवर से माँगू ऐसे तो हालात नहीं,
इतना दिया गुरुवर ने मुझको जितनी मेरी औकात नहीं।

(1)

दशरथ जैसे पिता दिये हैं जिनका कोई जवाब नहीं।
मन की तमन्ना पूरी कर दी दिल में कोई ख्वाब नहीं।।
माता है कौशल्या जैसी, कहने की कोई बात नहीं।
इतना दिया गुरुवर ने मुझको, जितनी मेरी औकात नहीं।।

(2)

रहने को एक बड़ा ही सुन्दर घर मुझको दे दीना है।
जितना चैन वहां मिलता है, उतना चैन कहीं ना है।।
भोले भाले सद्गुरु मेरे छल की कोई बात नहीं।
इतना दिया गुरुवर ने मुझको जितनी मेरी औकात नहीं।।

(3)

सुख दुःख की बातें करने को दिया मुझे जीवन साथी।
बेटा–बेटी दिये हैं मुझको, और दियें जीवन साथी।।
खुशियों में दिन निकल रहे हैं गम की कोई बात नहीं।
इतना दिया गुरुवर ने मुझको, जितनी मेरी औकात नहीं।।

(4)

सुन्दर दी है मुझको काया धन दौलत की कमी नहीं।
सब को दिया है सद्गुरु जी ने एक अकेले हमी नहीं।।
सत्य बयाँ कमलेश कर रहा ये उसके जज्बात नहीं।
इतना दिया गुरुवर ने मुझको जितनी मेरी औकात नहीं।।

'यहाँ की प्रत्येक पत्तल मेरी'

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

उपरोक्त अमोघ वाक्य, किसके मुखारबिन्द से, कब, किसको निमित्त बना कर, क्यों और कहाँ कहा गया है, इसको अहैतुकी कृपा सागर, अनाथ–नाथ श्रीसद् गुरुदेव जी महाराज की करुणा कृपा से समझने एवं समझाने का प्रयत्न करना ही इस अलौकिक कृपा प्रसंग का मुख्य विषय है।

हमारे एक आदरणीय गुरुभाई दम्पत्ति हैं, जिनके नाम श्री सीताराम झा तथा श्रीमती बैनी झा है। इस समय आप लोगों का निवास स्थान मध्य प्रदेश की राजधानी एवं झीलों के शहर भोपाल के सुरेन्द्र विहार बाग मुगालिया कॉलोनी के मकान नम्बर एच. आई.जी. ए–5 में है। आदरणीय श्री सीताराम झा जी मध्य प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग में प्रथम श्रेणी अधिकारी (क्लास वन ऑफीसर) के पद से कुछ वर्षों पूर्व सेवा मुक्त हुए हैं। इस दम्पत्ति के दो सुपुत्र एवं एक सुपुत्री हैं। बड़े सुपुत्र का नाम श्री योगेश झा जी है, जो डाक्टरी की पढ़ाई पूर्ण करके चिकित्साधिकारी के पद पर कार्यरत् हैं तथा इनकी सहधर्मिणी पत्नी श्रीमती सारिका जी भी डाक्टरी की परीक्षा पूर्ण करके विशेष चिकित्साधिकारी कैन्सर के पद पर कार्यरत है। आदरणीय भाई जी की बच्ची का नाम कृष्णा है जो शादी शुदा है तथा अब उनका नाम श्रीमती कृष्णा शर्मा है, क्योंकि इनके पतिदेव का नाम श्री गोकुल शर्मा जी है, जो राजस्थान सरकार के किसी विभाग में अधिशाषी अभियन्ता के पद पर वर्तमान समय में कार्यरत हैं। आदरणीय भाई जी के दूसरे पुत्र का नाम श्री निमिष झा (मधुर मोहन झा) है, जो वर्तमान में बी.बी.ए. और एम.बी.ए. की साथ पढ़ाई, मध्य प्रदेश के सबसे श्रेष्ठ शिक्षालय से कर रहे हैं, एवं शिक्षालय के शिक्षार्थियों में इनका स्थान अग्र–गण्य है।

आदरणीय भाई झा जी की दीक्षा आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा सन् उन्नीस सौ तिहत्तर में गंगा दशहरा के पर्व पर श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में हुई। इसके उपरान्त भाई जी का श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश तथा योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवाँई धाम पर उत्सवों पर आना–जाना बना रहा। गुरुदेव के प्रति इनकी श्रद्धा बढ़ती गई एवं सन् उन्नीस सौ अस्सी में, श्री महाप्रभु के अवतारोत्सव में भाग लेने अपनी धर्मपत्नी के साथ, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवाँई धाम पहुँचे, तो अनाथनाथ श्री गुरुदेव भगवान से अपनी सहधर्मिणी को योग दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। श्री सद्गुरुदेव भगवान ने आदरणीय भाई जी को उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बैनी झा के साथ सपत्नीक दीक्षा प्रदान की। सपत्नीक दीक्षा के लगभग दो वर्ष बाद इनका दूसरा लड़का गर्भ में

आया। उस समय आदरणीया गुरु बहन श्रीमती बैनी देवी योगोत्सवों में भाग लेने जब आश्रम पहुँची एवं श्री गुरुदेव को सादर प्रणाम निवेदित किया तो यह भी प्रार्थना की, कि प्रभो! अच्छी सन्तान देने की कृपा की जाय। श्री मुख ने अपने कर–कमलों द्वारा पुष्प प्रसाद देते हुए, मधुर मुस्कान के साथ कहा था कि लल्ली, ऐसा ही होगा। उसके कुछ महीने बाद, उन्हें स्वप्न में यह स्पष्ट दिखलायी दिया कि परम योग–योगेश्वर महाप्रभु जी महाराज आये एवं इनकी गोद में एक बालक देते हुए बोले, ''यह ले मुनिया।'' समय बीतता गया एवं तेरह सितम्बर सन् उन्नीस सौ तिरासी को इनके दूसरे सुपुत्र श्री निमिष झा का जन्म हुआ।

समय बीतता गया एवं आदरणीय भाई श्री झा जी का सांसारिक जीवन बड़ा ही सुखमय ढंग से व्यतीत होता गया, क्योंकि श्री गुरु चरणों में आपके पूरे परिवार की अनन्य निष्ठा थी एवं है। समय के साथ बालक निमिष भी बढ़ता गया एवं सन् दो हजार एक में उसने बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की। बारहवीं उत्तीर्ण करने के बाद बालक निमिष के मन में डॉक्टर बनने की इच्छा धीरे–धीरे बलवती होती गयी एवं उसने पी.एम.टी (प्री मेडिकल टेस्ट) अर्थात् डॉक्टरी प्रवेश परीक्षा की तैयारी खूब लगन के साथ करना आरम्भ कि"। पहली बार सन् दो हजार एक–दो में श्री निमिष ने डाक्टरी प्रवेश परीक्षा दी एवं असफल रह। इस बार श्री निमिष के मन पर असफल होने का रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा, कारण यह था कि वह अपनी प्रवेश परीक्षा की तैयारी से स्वयं संतुष्ट नहीं था एवं दूसरा कारण यह था कि उसकी जान–पहचान वाले सभी प्रवेश परीक्षार्थी असफल थे। इस असफलता से वह कुछ विशेष प्रसन्न ही था एवं मन श्री गुरुदेव से प्रार्थना कर रहा था कि प्रभो! आपने अच्छा ही किया, क्योंकि यदि मैं, प्रवेश परीक्षा में खराब रैंक से पास होता, तो हमें बड़ा दुःख होता, अब दुःख से आपने हमें बचा लिया, यह आपकी कृपा है। इसके विपरीत उसकी प्रभु चरणों की श्रद्धा में बढ़ोत्तरी हुई। यह करुणासागर श्री गुरुदेव भगवान की अकारण कृपा का प्रसाद ही रहा कि श्री निमिष झा का श्री चरणों में श्रद्धा एवं विश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। श्री निमिष आगे आने वाले दो वर्षों में भी डॉक्टरी प्रवेश परीक्षा दिया एवं दोनों बार असफल रहा। चौथी प्रवेश परीक्षा की कोचिंग के लिए आते–जाते एवं साथ पढ़ते श्री निमिष की मित्रता प्रवेश परीक्षा की तैयारी कर रहे दो बालकों से हो गई। जिनके नाम क्रमशः श्री अर्पित जैन एवं श्री सुशील झा हैं।

चौथी बार प्रवेश परीक्षा देने जाते समय श्री निमिष जी, हमारे आप के एवं संपूर्ण चराचर के कर्त्ता–धर्त्ता योगेश्वर द्वय (योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज तथा परम योग–योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) के स्वरूप के सामने साष्टांग प्रणाम कर बड़े ही आर्तभाव से प्रार्थना किये, ''प्रभो! इस बार अच्छे रैंक से हमें सफल करने की कृपा की जाय, इस बार अवश्य ही पास करने की कृपा की जाय।''

चौथी बार परीक्षा के लिए ये पूर्णरूपेण तैयार थे। कहने का तात्पर्य यह कि प्रवेश परीक्षा में आने वाले विगत दस वर्षों के प्रश्नों के उत्तर उन्हें पूर्णतया याद थे तथा कई कोचिंग

संस्थाओं के अगली प्रवेश परीक्षा में आने वाले संभावित प्रश्नों का उत्तर भी इन्हें कंठस्थ था। संक्षेप में कहा जाय तो अगली प्रवेश परीक्षा के प्रश्नोत्तर पर इनका पूरी तरह कमांड था। इन्होंने चौथी बार प्रवेश परीक्षा दिया, इनके कथनानुसार पेपर अच्छे हुए थे। परंतु इस बार भी परीक्षाफल आशा के विपरीत रहा और ये फेल हो गये। इनके दोनों जिगरी दोस्त श्री अर्पित जैन एवं श्री सुशील झा का सलेक्शन क्रमशः बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (बी.एच.यू.) उत्तरप्रदेश तथा के.ई.एम. बम्बई के मेडिकल कॉलेज में डाक्टरी की पढ़ाई हेतु प्रवेश होगया।

इनके दोनों मित्र इनकी असफलता से काफी दुःखी थे एवं परामर्श दिये कि तुम अगली प्रवेश परीक्षा की तैयारी करो। रंचमात्र भी निराश या उदास होने की आवश्यकता नहीं है। इस बार तुम्हारा सलेक्शन अवश्य हो जायेगा। इन्होंने खूब अच्छी प्रकार से तैयारी करके परीक्षा दिया परंतु इस बार भी इन्हे निराशा ही हाथ लगी। इस बार भी उनके दोनों मित्रों को काफी दुःख हुआ जो एम.बी.बी.एस. की पहले साल की पढ़ाई पास कर दूसरे वर्ष में प्रवेश पा चुके थे। अपने मित्रों के परामर्श को स्वीकार करते हुए श्री निमीष जी ने अपनी पढ़ाई का कार्यक्रम तीव्रतम कर दिया एवं पाँचवी बार प्रवेश परीक्षा का प्रश्न पत्र हल किया परंतु ये इस बार भी असफल रहे। इस परीक्षा से इन्हें कुछ उदास होना पड़ा। इनके उपरोक्त दोनों मित्रों ने इन्हें काफी उत्साहित्त किया एवं इन्होंने फिर प्रवेश परीक्षा दिया एवं दिन रात श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना की कि प्रभो ! अबकी बार हमें बहुत ही अच्छे रैंक से उत्तीर्ण कराने की कृपा जाय।

एक रात ये सोते समय प्रार्थना किये कि प्रभो! हमने सुना है एवं देखा भी है कि आप पुष्प प्रसाद देकर असम्भव कार्य को सम्भव बना देते हैं, कृपया हमें भी पुष्प प्रसाद देकर मेडिकल प्रवेश परीक्षा में अच्छे रैंक से पास कराने की कृपा करें। उसी रात योग निद्रा में इन्हें श्री गुरुदेव भगवान के दर्शन हुए और आराध्यदेव ने इनके सामने एक पुष्प का प्रसाद रख दिया एवं कहा कि लल्ला! इसे उठाकर खा जाओ। यदि तुम इसे ग्रहण कर लेते हो तो तुम्हारा सलेक्शन 'एम्स' (आल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट) में अवश्य हो जायेगा, इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है। श्री निमिष जी ने योग निन्द्रा में उस पुष्प प्रसाद को उठाकर खाने के लिए अथक प्रयास किया परंतु ये पुष्प प्रसाद को स्पर्श तक नहीं कर पाये। आभास तो इन्हें योग निन्द्रा में ही हो गया कि इस बार भी असफल ही रहूँगा। इस बार भी ये प्रवेश परीक्षा दिये एवं जैसे परीक्षाफल की इन्हें आशा थी, वैसा ही हुआ। ये इस बार भी फेल हो गये।

महाप्रभु जी के अवतारोत्सव दिवस चैत्र सुदी नौमी दो हजार सात की घटना है। हमारे परम आदरणीय गुरुभाई श्री गुरुमुख दास (जी.डी.) थिरवानी जी भी इस महोत्सव का आध्यात्मिक आनन्द लेने तथा पुण्य अर्जन करने श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम पहुँचे हुए थे। हमारे इस बड़े गुरुभाई की एक विशेषता है। यदि किसी जिज्ञासु, नवागन्तुक अथवा हमारे किसी गुरुभाई बहन ने आराध्यदेव योगेश्वर द्वय का कृपा चरित्र सुनाने का इनसे आग्रह किया

तो आदरणीय भाई जी (नान स्टापेज स्पेशल ट्रेन की तरह) बिना किसी रुकावट के लगातार श्री प्रभु कृपा चरित्र सुनाते रहेंगे एवं थकेंगे ही नहीं। अनेकों बार हमें भी इनसे प्रभु लीला या कृपा चरित्रों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्री प्रभु जी से प्रार्थना है कि बड़े भ्राता श्री थिरवानी जी को जीवन पर्यन्त कृपा एवं लीला चरित्रों को सुनाते रहने की शक्ति एवं सामर्थ्य प्रदान करने की कृपा की जाय। यही बड़े भ्राता कोई कृपा चरित्र सुना रहे थे, एवं उसी श्रोता मण्डली में श्री निमीष जी भी पहुँच गये एवं एकाग्र मन से सुनते रहे। जब वह कृपा चरित्र पूर्ण हो गया एवं श्रोता– वक्ता दोनों कुछ क्षण के लिए शान्त हो गये तो श्री निमिष जी ने भाई जी से निवेदन किया कि मैं पिछले छः वर्षों से मेडिकल प्रवेश परीक्षा दे रहा हूँ, तैयारी भी अच्छी प्रकार से किया हूँ परंतु हर बार फेल हो जाता हूँ। इन वाक्यों को उसने बड़े ही कारुणिक ढंग से कहा एवं वाक्य पूरा होते – होते उसकी आँखें आँसुओं से भर आयी। अन्त में उन्होंने कहा कि पता नहीं श्री प्रभु जी की क्या इच्छा है। आदरणीय भाई जी को उनकी बातों को सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ एवं उन्होंने मन ही मन श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना किया कि प्रभो! अपने इस निराश बालक पर कृपा की जाय। हमारे श्री प्रभु जी मन की प्रार्थना सुनने में बेजोड़ हैं एवं उनका सर्वमान्य सिद्धान्त है–

प्रबल प्रेम के पाले पड़कर, प्रभु को नियम बदलते देखा।
उनका मान भले टल जाये, जन का मान न टलते देखा।।

आखिर दयासागर को कृपा करनी ही पड़ी। महाप्रभु जी के अवतार दिन नौमी महोत्सव के दिन श्री निमिष, श्री सिद्ध गुफा सवाँई धाम की विगत कई सालों से अनवरत झाडू लगाने वाले एवं अपना मान श्री चरणों में समर्पित करने वाले हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री विजय शंकर पाण्डेय जी के दो सुपुत्रों क्रमशः श्री योगानन्द पाण्डेय एवं श्री नित्यानन्द पाण्डेय के साथ, जब से भण्डारा आरम्भ हुआ, तब से लेकर अपराह्न पौने चार बजे तक लगातार प्रसाद ग्रहण करने वाले श्रद्धालुओं को भोजन कराते रहे। इसके उपरान्त भोजनार्थियों की संख्या नगण्य ही रही। तत्पश्चात् तीनों आपस में परामर्श किये कि अब हम लोगों को भी भण्डारे का प्रसाद ग्रहण कर लेना चाहिए। इसके बाद श्री निमिष ही तीन पत्तल एवं दोना लाये एवं लाइन में रखकर बैठ गये। क्रम इस प्रकार रहा कि श्री नित्यानन्द पाण्डेय मध्य में, उनके दाहिने श्री निमिष झा तथा बायें श्री योगानन्द पाण्डेय। सेवारत गुरुभाईयों द्वारा तीनों पत्तलों पर प्रसाद परस दिया गया, उसी समय श्री योगानन्द ने श्री नित्यानन्द से कहा, "जाओ ऊपर के कमरे में से मिर्ची का तीन अचार ले आओ, खूब आनन्द के साथ प्रसाद ग्रहण किया जायेगा।"

उधर श्री नित्यानन्द मिर्ची का अचार लेने अपने पिता श्री के कमरे में ऊपर छत पर जाना आरम्भ किया एवं इधर एक महात्मा जी, जो बिल्कुल सफेद वस्त्र धारण किये हुए थे एवं एक सफेद तौलिया कन्धे पर दोनों तरफ लटक रही थी, जिस पर लम्बे तिरंगे की एक

पट्टी थी तथा आँखों पर मोटे शीशे का चश्मा लगाये हुए थे, आकर बीच वाली पत्तल अर्थात् नित्यानन्द की पत्तल के सामने साधिकार बैठ गये। इनके उस स्थान पर बैठते ही श्री निमिष ने विनीत शब्दों में निवेदन किया, ''बाबा ये पत्तल हमारे एक भाई के लिए लगायी गयी है जो अभी आ रहा है।'' तुरन्त उस महात्मा जी ने कहा, ''लल्ला! इस आश्रम की प्रत्येक पत्तल मेरी है, यहाँ की प्रत्येक चर एवं अचर वस्तु पर मेरा अधिकार है। मुझे किस–किस पत्तल से उठाओगे?'' इस सिद्ध योग परिवार से सम्बन्ध रखने वाले हमारे भाई–बहन अब यह अवश्य ही समझ गये होंगे कि ''यहाँ की प्रत्येक पत्तल मेरी है'' यह वाक्य अपने मुखारविन्द से निकालने वाले महात्माभेष धारी महापुरुष और कोई नहीं बल्कि कालचक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले त्रिजग पावन, परम योग योगेश्वर, देवाधिदेव मेरे एवं आप के आराध्यदेव श्री सद्‌गुरुदेव भगवान ही हैं। अब श्री गुरुदेव भगवान ने कैसे कृपा की उसका वर्णन निम्न प्रकार है।

उनके उपरोक्त वाक्य को सुनकर श्री निमिष ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि बाबा गलती हो गई, उसे क्षमा करने का कष्ट करें एवं प्रसाद ग्रहण करने की कृपा करें। उन्होंने अपनी मधुर मुस्कान के साथ कहा कि अब तुम लोग भी भोजन करो। इसी बीच श्री नित्यानन्द भी आ गये एवं इशारों से बात समझ कर अपनी पत्तल उसी लाइन में लगाकर बैठ गये। महात्मा जी ने प्रसाद ग्रहण के साथ प्रश्न किया, ''लल्ला तुम्हारा नाम क्या है?'' श्री निमिष जी ने निवेदन किया, ''महाराज! मेरा नाम निमिष झा (मधुर मोहन झा) है।''

महात्मा जी बोले, ''लल्ला! तुम्हारा खानदान मूल रूप से बिहार प्रान्त का निवासी है। तुम्हारे पिताजी का नाम सीताराम झा है तथा उनका गोत्र शान्डिल्य है। तुम्हारी माता का नाम बैनी झा है और उनका भारद्वाज गोत्र है। तुम्हारी माता ने, जब तुम गर्भ में थे, अपने श्री गुरुदेव भगवान से संस्कारी सन्तान देने की प्रार्थना की थी। तुम अपने भविष्य को लेकर काफी चिन्तित हो? क्या तुम डाक्टर बनना चाहते हो?

अपने पूरे खानदान का भूत, भविष्य एवं वर्तमान उस महात्मा से सुनकर श्री निमिष झा को पूर्ण रूपेण विश्वास हो गया कि ये महात्मा सर्वज्ञ हैं। उसने उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रार्थना किया, ''बाबा जी, मैं डाक्टर बनना चाहता हूँ।'' उसकी प्रार्थना सुनकर बाबा जी ने मधुर मुस्कान के साथ कहा, ''लल्ला! तुम्हें डाक्टर नहीं बनाना है। जानते हो क्यों? कुछ क्षण रुक कर, तुम पूर्णरूपेण भ्रष्टाचारी बन जाओगे और मैं तुम्हें वैसा नहीं बनने दूंगा। कारण, तुम्हारी माँ को दिया गया आशीर्वाद असत्य हो जायेगा। अब तक तुम्हारा चरित्र पवित्र सा ही है। अब मेरी बात ध्यान से सुनो, डाक्टर बनने की इच्छा मन से सदा–सर्वदा के लिए निकाल दो। यहाँ से भोपाल जाने पर तुम किसी मैनेजमेन्ट कोर्स वाले विद्यालय में प्रवेश के लिए प्रयत्न करना एवं उसमें तुम्हारा प्रवेश हो जावेगा। एक बात औ, तुम चौबीस घन्टे में आठ घन्टे सोते हो, यह अच्छी आदत नहीं है, सिर्फ छः घन्टे सोना, तुम्हारी नींद पूरी हो जायेगी।''

महात्मा जी की वाणी के उपरोक्त वाक्य समाप्त होते–होते सबने अच्छी प्रकार से प्रसाद ग्रहण कर लिया था। तदन्तर श्री निमिष झा ने निवेदन किया कि बाबा जी आप कहाँ से आये हैं? बाबा जी ने मनोहारी मुस्कान से कहा, ''लल्ला! हम वहीं से आये हैं, जहाँ तुम्हारे महाप्रभु जी एवं गुरुदेव जी रहते हैं'' फिर श्री निमिष झा ने निवेदन किया, ''बाबा जी! यदि आप की आज्ञा हो तो मैं आप का पत्तल उठाकर आश्रम से बाहर फेंक आऊँ?'' बाबा जी ने कहा, ''ले जाओ लल्ला।'' ये तीनों भाग्यवान बालक, पत्तल–दोना एवं जमीन पर गिरे भोज्य पदार्थ को लेकर बाहर फेंकने के लिए जाते समय चार–पाँच कदम बाद पीछे मुड़कर देखें तो बाबा जी वहाँ नहीं दिखे। पत्तल–दोना फेंक कर, हाथ धोकर ये बाबा जी की खोज में श्री सवाँई धाम के प्रत्येक कमरे, हाल, यज्ञशाला, पवित्र तालाब एवं सभी सम्भावित जगह ढूँढ लिए, परंतु बाबा जी नहीं मिले। प्रायः सुनने में आता है कि जब श्री गुरुदेव भगवान, परम योग–योगेश्वर दादा गुरुदेव जी किसी को स्थूल रूप से दिखलायी देते हैं, तो समयान्तर हो जाता है, अर्थात् द्रष्टा को यही लगता है कि ये तो अभी हैं और रहेंगे। उसे उस समय ज्ञान ही नहीं रहता कि ये महापुरुष उस पर कृपा करने के लिए ही, उतनी देर तक वह शरीर रखते हैं। बाबा जी द्वारा बार–बार लल्ला! कह कर सम्बोधन एवं प्रार्थना करने पर यह स्पष्ट बतलाना कि मैं वहीं से आया हूँ जहाँ तुम्हारे गुरुदेव एवं महाप्रभु जी निवास करते हैं, एवं हमारे उपरोक्त भाईयों को पूर्ण रूपेण ज्ञान न होगा, माया – पति की माया का प्रभाव ही है:–

किसी गुरुभक्त ने ठीक ही कहा है कि –

प्रभू उपकार का बदला, चुकाया जा नहीं सकता।
गुरु ने जो कृपा की है, भुलाया जा नहीं सकता।।

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान		–	श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधिक्रम		–	मासिक
3. मुद्रक का नाम		–	दासलाल शर्मा
	राष्ट्रीयता	–	भारतीय
	पता	–	श्री सिद्धगुफा सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम		–	दासलाल शर्मा
	राष्ट्रीयता	–	भारतीय
	पता	–	श्री सिद्धगुफा सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम		–	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी		–	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

दासलाल शर्मा

28 फरवरी 2010 — कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा

अष्टांग योग

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

चित्त का स्वरूप

चित्त बुद्धिवृत्तियों, मनोवृत्तियों तथा इन्द्रियवृत्तियों का माध्यम है, संघात है। यह वृत्तियाँ प्रकृति के तीन गुणों तथा उनसे जनित विकारों के परिणामस्वरूप अन्तःकरण में उत्पन्न होती हैं तथा अहंकार का आश्रय लेकर कर्माशय का निर्माण करती हैं। कर्माशय में कर्मबन्धन के मायाजाल का निर्माण होता है। यह वृत्तियाँ पाँच क्लेश अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश के परिणामस्वरूप माया का मलावरण तैयार करती हैं। यही मलावरण अज्ञान का मोहजाल उत्पन्न करके जीवात्मा को आवागमन के संसारचक्र में बाँधकर रखता है। आत्मा तथा परमात्मा का अभिन्न सम्बन्ध है। अतः आत्मा सर्वव्यापी, निष्क्रिय, निर्गुण, अविकारी, अविनाशी तथा सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म ही है जिस पर अज्ञान के कारण जीवभाव आरोपित हो जाने से उसे जीवात्मा कहा जाता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अंधकार के कारण रज्जु पर सर्वभाव आरोपित हो जाता है। महर्षि पतंजलि इस सत्य को इस प्रकार समझाते हैं कि

''दृष्टा दृशिमात्रो शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः'' (योगदर्शन 2/20)

''योग: चित्तवृत्तिनिरोधः'' (योगदर्शन 1/2)

''तदा दृष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्'' (योगदर्शन 1/3)

''वृत्तिसारूप्यमितरत्र'' (योगदर्शन 1/4)

अर्थात् सभी शरीरों में परमात्मा का अंशरूप आत्मा ही एकमात्र दृष्टा, ज्ञाता तथा सर्वसाक्षी है। वह माया के विकारों से रहित परम शुद्ध है, किंतु मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से एकात्मता होने के कारण ही चित्तवृत्तियों से आरोपित आत्मतेज उसी तरह गुप्त रहता है जिस तरह प्रेक्षाग्रह (थियेटर) के परदे पर फिल्म जगत से आरोपित प्रकाशकिरणें गुप्त रहती हैं। परदे पर प्रकाश को तभी देखा जा सकता है जब प्रोजेक्टर से फिल्मरील को हटा दिया जाय। उसी तरह चित्तरूपी परदे पर आत्मस्वरूप का अनुभव तभी सम्भव है, जबकि चित्तवृत्तियों का नितान्त निरोध हो जाय। इसी निरोध की प्रक्रिया को योग कहते हैं।

योग की यह प्रक्रिया क्रियात्मक, श्रद्धात्मक तथा ज्ञानात्मक है। क्रियात्मक को क्रियायोग अथवा साधनयोग कहते हैं। श्रद्धात्मक को भक्तियोग कहते हैं जिसमें मन तथा बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में इस प्रकार लय किया जाता है कि मन तथा बुद्धि की वृत्तियाँ

परमात्म चिन्तन में शान्त होती है तथा उसी से उदय भी होती है यानि एक ही प्रेमरस में डूबी रहती है और यह प्रेम की धारा परमात्मा के सगुण स्वरूप से प्रकट होती है और उसी में लय भी होती है। ज्ञानात्मक को ज्ञानयोग कहते हैं। साधक शास्त्रों तथा महापुरुषों के सत्संग के माध्यम से तत्वज्ञान तथा विवेक बुद्धि को समृद्ध करता जाता है। जगदात्मा श्रीकृष्ण इसे अपने मुखारविन्द से समझाते हैं कि –

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्तः इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः।।
वीतरागभयक्रोधः मन्मयः मामुपाश्रितः।
वहवो ज्ञानतपसः पूतः मद्भावमागतः।।

अर्थात् योगी बनने के लिए ज्ञान द्वारा विवेक–बुद्धि को समृद्ध करके वैराग्य के द्वारा मनोवृत्तियों पर संयम किया जाता है। वैराग्य हो जाने पर चित्त भोगविलास के साधनरूप धन–सम्पत्ति में आसक्त नहीं होता है, उसके लिए मिट्टी, स्वर्ण तथा पाषाण तात्विक दृष्टि से समान हैं, किसी की किसी अन्य पर वरीयता नहीं है। ऐसे साधक का मन तथा बुद्धि तत्वज्ञान तथा उसकी अपरोक्ष अनुभूति से इस प्रकार तृप्त हो जाते हैं कि चित्तवृत्तियाँ स्वतः ही शान्त हो जाती हैं और परिणामस्वरूप चित्त में क्रम से एकाग्रता परिणाम, समाधिपरिणाम तथा निरोधपरिणाम का परिवर्तन होता जाता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप वृत्तियाँ क्षीण होती जाती हैं। चित्तरूपी दर्पण निर्मल होता जाता है, वृत्तियों के अभाव में चित्त में आत्मप्रतिबिम्ब स्पष्ट होता जाता है। शनैः शनैः योगी का मन आत्मस्थ होता जाता है। मन का बाह्य व्यापार रुक जाता है। मन पर संयम हो जाने पर इन्द्रियों का व्यापार भी बन्द हो जाता है। बुद्धि का स्थूलशरीर तथा सूक्ष्म शरीर से सम्पर्क टूट जाने से स्वरूपशून्यता आ जाती है और अहंकार कूटस्थ आत्मतत्व में समाहित होने लगता है। इसी स्थिति के विषय में अष्टावक्र जी राजा जनक को बताते हैं कि –

यदि देहं प्रथक्कृत्य चिदि विश्रम्य तिष्ठति।
अधुनैव सुखी शान्तो वन्धमुक्तो भविष्यति।।

अर्थात् जब बुद्धि मायाजनित शरीरों से पृथक् होकर प्रज्ञारूप में आत्मतत्व में लीन हो जाती है तब उसी क्षण वह जीवात्मा सभी मायिक बन्धनों से मुक्त होकर परम सुखी हो जाती है। यह सिद्धि कब और कैसे प्राप्त हो सकती है, इस पर परमात्मा स्वरूप श्री कृष्ण स्वयं समाधान देते हैं कि मेरी माया के पाँच क्लेशों में प्रथम दो यानि अविद्या तथा अस्मिता तो मेरी कृपा से नष्ट होते हैं, क्योंकि वह क्रिया साध्य नहीं अपितु कृपा साध्य हैं और मेरी कृपा के लिए मुझ में पूर्ण समर्पण तथा मन तथा बुद्धि की मेरी चिन्तनरूप अग्नि में आहुति देनी पड़ती है किंतु अन्तिम तीन क्लेशों यानि राग, द्वेष तथा अभिनिवेष को नष्ट करने के लिए योगसाधना

की आवश्यकता होती है। तभी विज्ञानस्वरूप परमात्मा में योगी का प्रवेश होता है। विष्णुपुराण में इस रहस्य को इस प्रकार प्रकट किया जाता है, कि –

ज्ञानस्वरूपमखिलं जगत् एतदबुद्धय:।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते मोहसंप्लवे।।
ये तु ज्ञानविद: शुद्धचेतस: ते अखिलं जगत्।
ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वत्रूपं पारमेश्वरम्।।

अर्थात् सिद्धयोगियों की दृष्टि में यह सम्पूर्ण जगत ज्ञानस्वरूप परमात्मा का ही रूप है, अज्ञानी ही इस जगत को पदार्थ रूप में देखते हुए मोहसागर में डुबकी लगाते रहते हैं। किंतु जो योगसाधना के द्वारा शुद्धचित्त हो चुके हैं और जिनको परमात्मा की कृपा प्राप्त हो चुकी है, वह इस सम्पूर्ण जगत को परमात्मा का ही विज्ञानमय स्वरूप देखते हैं। पदार्थ स्वरूप जो संसार दृष्टिगोचर होता है, वह केवल संकल्प से उत्पन्न भावना की ही प्रतिमूर्ति है। विष्णु पुराण में इसकी पुष्टि की गई है, कि –

वस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटात्मकम्।
तथान्ये च नृपत्वं च ततसंकल्पनामयम्।।

अर्थात् इस संसार में राजा की उपाधि अथवा राजकर्मियों की उपाधियाँ तथा अन्य सभी शरीरों की उपाधियाँ केवल संकल्पों से उत्पन्न हुई हैं। प्रत्येक जीवात्मा अपने संकल्पों के अनुसार जन्म धारण करती है तथा अन्यान्य लोकों में विचरण करती है। हमारे जीवन की सबसे बड़ी शंका यही है कि जब जीवात्मा तथा परमात्मा अभिन्न हैं तब दोनों में जमीन तथा आसमान जैसा अन्तर क्यों है कि एक ज्ञान, शक्ति तथा आनन्द का असीमित सागर जैसा है तब दूसरा दु:ख तथा अज्ञान के सागर में शक्तिहीन सा दिखाई देता है। श्रुतिशास्त्र में इसका उत्तर दिया गया है कि –

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्ट: तत: तेनामृतत्वं एति।।

(श्वेता 1/6)

उद्‌गीतं एतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिन् त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ता:।।

(श्वेता 1/7)

संयुक्तं एतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीश:।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै:।।

(श्वेता. 1/8)

अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा को भिन्न–भिन्न मानने के कारण ही यह जीवात्मा इस परा तथा अपरा प्रकृति रूपी ब्रह्म से उत्पन्न मायाचक्र में भ्रमित होकर जीवन धारण करती है, उसके जन्म मरण के कर्मबन्धन में बँधकर इस महान भवसागर में सुख–दुःख की लहरों में बहती रहती है। जैसे ही यह मायाजनित अविद्या का अंधकार हटता है, कर्मबन्धन का मायाजाल टूट जाता है तथा दोनों की अभिन्नता का ज्ञान होने पर दोनों योग समाधि में एक हो जाते हैं, वैसे ही जीवात्मा अमृतत्व को प्राप्त कर अपनी मिथ्या जीवात्मा की उपाधि का त्याग कर देती है, ठीक वैसे ही जैसे प्रकाश के प्रगट होने पर अंधकार स्वतः हट जाता है। भोक्ता के रूप में जीवात्मा, भोग्य के रूप में संसार तथा सर्वनियन्ता के रूप में परमात्मा, यह तीनों ही उस परम ब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं जिनकी अभिन्नता का ज्ञान ही मोक्ष का स्वरूप है। परमात्मा ही इस जीवभाव से आरोपित देहउपाधि के रूप में जीवात्मा तथा सर्वव्याप्त, सर्वाधार, निर्गुण एवं निराकार परमब्रह्म से संयुक्त विश्व का भरण–पोषण तथा नियन्त्रण करता है। दूसरी ओर अविद्या के वशीभूत जीवात्मा भोग–विलास के भ्रान्तिजन्य सुख–दुःख में बँधा हुआ सा रहता है। जब उसे अपनी भ्रान्ति का ज्ञान तथा अपने परमात्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है तब वह माया के पंच क्लेशों से मुक्त हो जाती है। जहाँ तक इस संसार में जीवात्मा, परमात्मा तथा अन्य देवों के विभागों का सम्बन्ध है, वह कल्पित है, अविद्याजनित है तथा स्वप्न के संसार जैसा ही सत्य है।

शास्त्रों में इसकी पुष्टि की गई है कि–

परमात्मनोर्मनुष्येन्द्रविभागो अज्ञानकल्पितः।
क्षये तस्य आत्मपरयोः विभागाभाव एव हि।।
आत्मा क्षेत्रज्ञसंज्ञोऽयं संयुक्तः प्राकृतैः गुणैः।
तैरेव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते।।
अनादिसम्बंधवत्या क्षेत्रज्ञोऽयं अविद्यया।
युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्म त्वात्मनि संस्थितम्।।
विभेदजनके अज्ञाने नाशमात्यान्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदं असन्तं कः करिष्यति।।

(विष्णुपुराण)

अर्थात् परमात्मा, मनुष्य तथा देवों में जो भेद तथा विभाग दिखाई देते हैं, वह सब अज्ञान के द्वारा कल्पित हैं। इस अज्ञान के नष्ट होने पर आत्मा तथा परमात्मा का भेद भी स्वतः नष्ट हो जाता है ठीक उसी तरह जिस तरह अंधकार के नष्ट होने पर रज्जु में सर्प की भ्रान्ति स्वतः नष्ट हो जाती है। प्रकृति के गुण तथा विकारों से रंजित चित्त में आत्मा का आभास शरीररूपी क्षेत्र में प्रकट क्षेत्रज्ञ है। इन गुण तथा विकारों के नष्ट हो जाने पर निर्मल

चित्त में आत्मा का वही आभास परमात्मा के रूप में दिखाई देने लगता है। अविद्या के कारण ही अनादि काल से क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का सम्बंध बना हुआ है। इस अस्मितारूप क्लेश के कारण जीवात्मा तथा परमात्मा का भेद दिखाई देता है। इस भेद को दर्शाने वाले अज्ञानाधकार का जब ज्ञानदीप्ति के प्रकाश से पूर्ण नाश हो जाता है तब आत्मा तथा परमात्मा का भेद सदैव के लिए नष्ट हो जाता है।

श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज का पावन जयन्ती महोत्सव

श्री रामलाल प्रभवे नमः **श्री चन्द्रमोहन सद्गुरुये नमः**

अपने आश्रम श्री सिद्धगुफा सवाँई आगरा में दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की पावन जयन्ती रामनवमी महोत्सव दिनांक 22, 23 व 24 मार्च सप्तमी, अष्टमी व नवमी तदनुसार सोम, मंगल एवं बुध को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है।

सभी गुरुभाई बहिन व गुरुभक्तों से निवेदन है कि इस भव्य एवं विशाल योग महा मेला में सपरिवार एवं इष्ट मित्रों सहित सम्मिलित होकर श्री प्रभु जी एवं गुरुदेव के दिव्य तेजस् रज से अपने को पावन बनावें तथा सत्संग लाभ लेकर पुण्य के भागी बनें।

जय सद्गुरुदेव की –

निवेदक –
समस्त आश्रम वासी
एवं श्रद्धालु भक्तगण
श्री सिद्ध गुफा सवाँई, एत्मादपुर
(आगरा).

गीत

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

प्रभू रामलाल जी का कोमल स्वभाव था, बड़ा लाजवाब था,
आज भी है और कल भी रहेगा ।। टेक।।

तुम विश्वास करो बुरे से बुरे अंक बदल देते हैं।
ये खुशियाँ देते हैं, कष्ट को तुरन्त मसल देते हैं।।

छोटे बड़े से सबसे अनुपम लगाव था; कोई न नकाब था;
आज भी है और कल भी रहेगा।।1।।

ये योगी राजा हैं भले ही भले आप नजर आते हैं।
जो जहाँ बुलाता है वहीं पर हाल पहुँच जाते हैं।।
दीन–दु:खी से निशिदिन भला बर्ताव था; खुली सी किताब था;
आज भी है और कल भी रहेगा।।2।।

ये खोजा करते हैं कौन हिरदय से नमन करता है।।
ये देखा करते हैं कौन सा भक्त भजन करता है।।
प्रभू की उंगलियों पे ही सबका हिसाब था; नहीं बे हिसाब था।
आज भी है और कल भी रहेगा।।3।।

अनजानी राहों पे कहीं न कहीं पीर कसक जाती है।
मगर इन प्रभु की किरपा से तकदीर बदल जाती है।।
भटके हुए को हरदम सुन्दर सुझाव था; मनहर बचाव था;
आज भी है और कल भी रहेगा।।4।।

गौ सेवा

अंशुमान देव मालवीय, वाराणसी

संस्कार का प्रभाव मनुष्य जीवन पर काफी हद तक पड़ता है। संस्कार के ही प्रभाव से मनुष्य अच्छा या बुरा बनता है। मनुष्य अपने अच्छे संस्कार के प्रभाव से ही आगे बढ़ता है। विश्व में हमारी भारतीय संस्कृति विख्यात है। उसका मुख्य कारण यह है कि हमारे देश में बहुत सी महान विभूतियों ने जन्म लिया है और इन महान लोगों ने अपने संस्कार को विशेष ध्यान देकर अपने–अपने कार्य को किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि हम विश्व विख्यात हुए परंतु आज के इस घोर कलियुग में जहाँ मनुष्य भौतिकवाद में इतना लिप्त हो गया है कि उसे अपनी भारतीय संस्कृति व पद्धति के विषय में जरा भी ज्ञान व सम्मान नहीं है। उसके पीछे मूल कारण उसका स्वयं का अज्ञान है। वह शास्त्र में लिखी बातों को नजरअंदाज कर रहा है। उसे तो यह भी नहीं पता कि जीवन जीने का लक्षण क्या है? हम अपने इस जीव को सर्वश्रेष्ठ कैसे बनायें–इस बात पर विचार भी नहीं कर रहा है, जिसका दुष्परिणाम व प्रभाव उसे भोगना पड़ता है। मनु महाराज ने जीवन के दस लक्षण बताये हैं।

घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

1. धैर्य, 2. क्षमा, 3. दम, 4. अस्तेय, 5. पवित्रता, 6. इन्द्रियों को वश में रखना, 7. बुद्धि, 8. विद्या, 9. सत्य, 10. अक्रोध

अगर हम इन दसों लक्षणों को ध्यान में रखकर अपने जीवन का जीयें तो हमारा भी जीवन महान बन सकता है और हम अपना यह जीवन समाज के सम्मुख आदर्श बना सकते हैं। हमारा लक्षण शुद्ध कर्म, शुद्ध भाषा, शुद्ध विचार तथा शुद्ध आचरण में परिवर्तित हो जायेगा और हम परोपकार का मार्ग चुनकर दूसरों के हितों के लिए ही कार्य करने को ही हम अपना निज धर्म समझेंगे। परोपकार की भावना आज लोगों में खत्म सी हो गई है।

आज इस घोर कलियुग में जहां भौतिकता में अधिकांश मनुष्य संस्कार विहीन हो गया है उसके कारण वह माँ–बाप, गुरु व गाय की सेवा तक भूल गया है। हमारी भारतीय संस्कृति ने गाय को माता स्वरूप समझा है। गाय माता की प्रत्येक चीज मनुष्य के लिए उपयोगी है। दूध से लेकर गाय माता का गोबर (मल–मूत्र) तक हमारे दवा के काम में आता है। गाय के उपले बनते हैं। उपले को ईंधन के कार्य में लिया जाता है। इतना लाभ होने के बावजूद आज इस कलियुग में मनुष्य द्वारा गाय को एक पशु के समान ही देखा जाता है। इसके पीछे मूल कारण उसका स्वयं की नकारात्मक सोच है। हमें अपनी भारतीय संस्कृति

को विचार में रखकर गाय माता की सेवा को ही सकारात्मक व सृजनात्मक बनाना होगा। जिससे हमारी आगे आने वाली पीढ़ी गाय माता को सम्मान दें।

आज भारतीय संस्कृति से जुड़े व जन्मे नीम व गाय से निकले चीजों व दवाओं का पेटेंट विदेशी करा रहे हैं। दुःख तो इस बात का है कि हम इन सभी चीज को विरासत में मिली होने के बावजूद इसकी कदर नहीं कर रहे हैं; परंतु भारतीय वस्तु का उपयोग कर विदेशी अभिभूत हो रहे हैं।

हमारे देश में ऐसे अधिकांश मनुष्य हैं जो गाय माता को आदर भाव से देखते हैं व गाय माता की सेवा करने की इच्छा मन में तो रखते हैं, परंतु साधन सम्पन्न न होने के कारण उनकी यह इच्छा अधूरी रह जाती है। परंतु हम अपने मन में पल रहे विचार को पूरा कर सकते हैं। इसके लिए जरूरी है कि हम अपने शारीरिक, मानसिक रूप द्वारा अपने आस–पास, पड़ौस में यह नजर रखें की कोई गाय माता अभिष्ट, पॉलीथिन और गन्दे पदार्थ न खाये और वाणी द्वारा जन जागरूकता फैलायें। हो सके तो अपनी सामर्थ्य भर एक समय गाय माता के आहार का प्रबन्ध करें।

अक्सर यह देखा जाता है कि लावारिस घूम रही गाय माता को चोट लग जाने व जल जाने पर कोई उसकी सहायता नहीं करता। ऐसे में हमारा धर्म बनता है कि हम उसे सरकारी पशु चिकित्सक को इस बात की जानकारी दें या फिर उसकी दवा का व उचित सहायता का प्रबन्ध करें। हो सके तो यह प्रयास भी करें की अपने घर के पास सड़क किनारे व पार्क में पड़े खाली स्थान पर पौधारोपण करें जिससे सभी को छाया व मानव जीवन को शुद्ध वातावरण मिल सके।

आइये हम संकल्प करें की गाय माता की सेवा करेंगे और अपने इस जीवन को सद्गुरु देव भगवान के चरणों में समर्पित कर चरण–रज से इस जीवन को दिव्य बनायेगें।

सूचना

मार्च अंक के साथ सिद्धयोग पत्रिका का शुल्क (वार्षिक) समाप्त हो रहा है। ग्राहकों को चाहिए कि मार्च तक वार्षिक शुल्क 140 रु. मनीआर्डर डाक से भेज दें सम्पादक सिद्धयोग के नाम से।

साथ ही कम से कम पाँच नये ग्राहक बनाकर आश्रम की सेवा में योगदान दें।

व्यवस्थापक
'सिद्धयोग' मासिक
श्री सिद्धगुफा सवाँई
आगरा

भौतिक भोग के इस युग में योग का अवलम्बन ही करेगा आपका कल्याण

उत्तम और सफल जीवन की एकमात्र विश्वसनीय कुंजी है योग !

योग-पथ पर बढ़ने हेतु सिद्धयोग की शरण लीजिए

सिद्धयोग

पढ़िये-पढ़ाइये !

योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक-पत्र

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

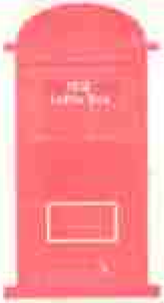

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना-

<u>निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा</u>

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आप्शन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

...योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री/सुश्री

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. ...
राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सर्वोई...
प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब...